# MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

# HASSANPUR

# NOTES

# CLASS:- M.A. (HINDI) 1st SEM

## SUBJECT: VISHESH RAHANKAR KABIRDAS -I (MC)

# विशेष रचनाकार :
# कबीरदास

एम.ए. प्रथम वर्ष ( प्रथम सेमेस्टर ) : पेपर-5

**भक्ति आंदोलन का अर्थ स्पष्ट करते हुए मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में कबीर के अवदान की समीक्षा कीजिए।**

*अथवा*

**'भक्ति आंदोलन और कबीर' विषय पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।**

---

**उत्तर–मध्यकालीन भक्ति आंदोलन**–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा दी थी। शुक्ल जी के कथनानुसार इस काल में मुख्यतः भक्तिपरक साहित्य ही लिखा गया। यही कारण है कि इस काल को भक्तिकाल के नाम से ही जाना जाता है। भक्ति आंदोलन के उदय के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कारण हैं। प्रताप चन्द जोनवाल ने स्वीकार किया है कि हिन्दी भक्ति साहित्य का आरंभ संवत् 1050 से हुआ। लेकिन अन्य आलोचक इस मत से सहमत नहीं हैं। वस्तुतः सम्वत् 1375 से सम्वत् 1700 तक के मध्य उत्तर काल में भक्ति-भगीरथी की लहर प्रवाहित हुई, जिसे भक्ति आंदोलन कहा गया परन्तु यह भक्ति आंदोलन हमारे देश में कैसा आया। इसके बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। आचार्य शुक्ल ने भक्ति आंदोलन को भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना तथा हिन्दुओं की हार से उत्पन्न निराशा का परिणाम माना है। बाबू गुलाबराय ने भी आचार्य शुक्ल का ही समर्थन किया। परन्तु डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मत का विरोध करते हुए कहा–"मुसलमानों के अत्याचारों के कारण यदि भक्ति भाव-धारा को उमड़ना ही था तो पहले सिंध में, फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।" इधर पाश्चात्य विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को ईसाई धर्म की देन कहा है जो कि किसी भी दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होता। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मत का जोरदार खण्डन किया। जिन विद्वानों ने भक्ति आंदोलन को मुस्लिम धर्म से प्रभावित माना है, उनका मत भी किसी भी दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होता। कबीर के किसी अनुयायी ने एक स्थल पर कहा है–

**भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानन्द,**
**प्रगट करि कबीर ने सात द्वीप नौ खण्ड।**

इस कथन में गहरा सत्य छिपा हुआ है। डॉ. सत्येन्द्र ने स्वीकार किया है कि भक्ति का उद्भव द्राविड़ों से हुआ। निश्चय से दक्षिण भारत से रामानन्द इसे उत्तर भारत में लेकर आए। इससे यह स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन शुद्ध भारतीय आंदोलन है। इसे किसी भी दृष्टि से विदेशी नहीं माना जा सकता। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन को सफल बनाने वालों में आलवार भक्तों का विशेष योगदान रहा है।

भक्ति आंदोलन में मुख्यतः दो काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई हैं–**निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा।** सगुण काव्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण भक्ति और राम भक्ति दो शाखाएँ आती हैं। निर्गुण धारा के अन्तर्गत संतों एवं सूफियों के काव्य की चर्चा की जा सकती है। नामदेव तथा कबीर द्वारा परिवर्तित भक्ति धारा को आचार्य शुक्ल ने निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा कहा है, लेकिन डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे निर्गुण साहित्य कहा है। परन्तु डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'संत काव्य परम्परा' से संज्ञा से अभिहित किया। आज अधिकांश विद्वान् इसे संत काव्य कहना ही समीचीन मानते हैं। सूफी काव्य परंपरा को सूफी काव्य प्रेमाख्यानक परम्परा भी

कहा जाता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी में सूफी सन्तों ने भारत में इस्लाम का प्रचार आरंभ कर दिया था। ये लोग संत कवियों के समान हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दे रहे थे। जायसी, कुतुबन, मंझन, शेखनबी, उसमान, कासिम शाह आदि इस काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि हैं। जायसी सूफी काव्यधारा के महान कवि माने जाते हैं। दूसरी ओर राम काव्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास, अगृदास, ईश्वरदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, लालदास आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। कृष्ण काव्यधारा में श्रीकृष्ण की भक्ति पर बल दिया गया है। सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, नन्ददास, छीतस्वामी, गोबिन्द स्वामी तथा चतुर्भुजदास में आठ कवि कृष्ण कवि हैं जो कि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। नीचे एक तालिका द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है–

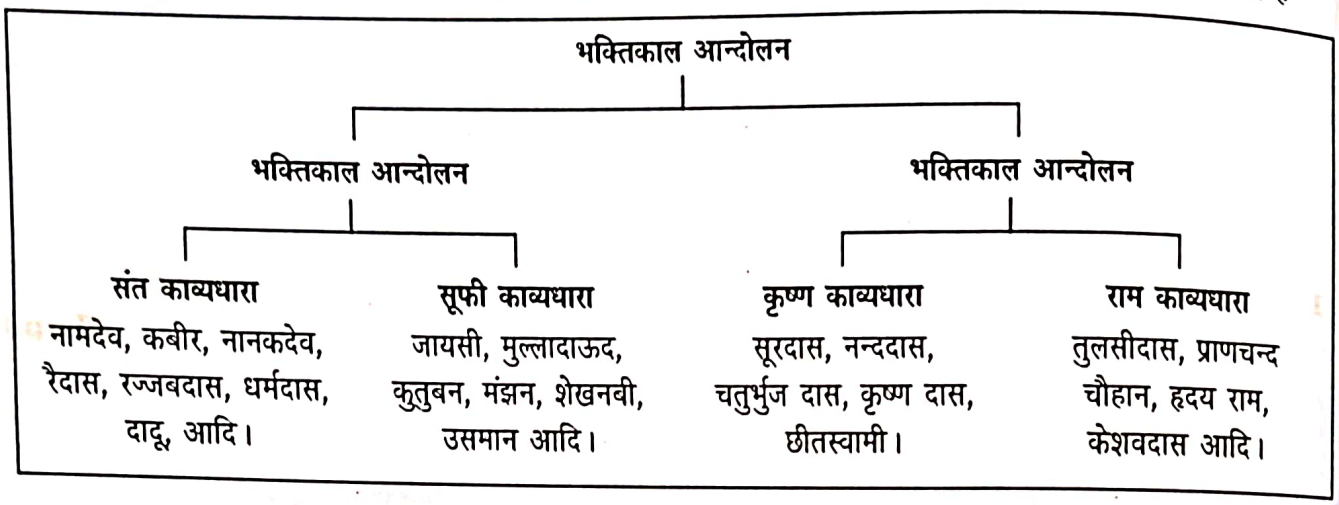


## *भक्ति आंदोलन में कबीरदास का अवदान*

यदि गहराई से देखा जाए तो भक्ति आंदोलन के अनेक रूप इस युग में प्रचलित थे। मध्यकाल में पाशुपत, वीरशैव, लिंगायत तथा कश्मीरी शैव आदि सम्प्रदाय प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार नाथ योगी भी अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने में संलग्न थे। वैष्णव धर्मानुयायी स्वामी रामानन्द और उनके अनुयायियों ने लोक प्रचलित भाषाओं का आश्रय लेकर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। वैष्णव धर्म मूलतः भक्ति प्रधान है जिस पर योग-साधना का प्रभाव भी है। वैष्णव धर्म-सम्प्रदायों तथा उप-सम्प्रदायों की सृष्टि मुख्यतः इनके आचार्यों द्वारा दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या करने के कारण हुई। द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि इन्हीं के परिणाम थे। रामावत, सहजिया, वारकरी महानुभाव, पंचसखा आदि ऐसे ही उप-सम्प्रदाय थे। उधर शाक्त धर्म में भी दक्षिणमार्गी और वाममार्गी नामक शाखाएँ बन गई थीं, परन्तु कबीरदास ने वाममार्गी शाक्तो का विरोध किया। इसके साथ-साथ शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म को सुव्यवस्थित करने के लिए स्मार्त सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें पंचदेवोपासेना की व्यवस्था की गई। इसके साथ-साथ बौद्ध और जैन मत भी अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने में संलग्न थे। भारतीय सूफी इस्लाम के बेशरा सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। मुस्लिम सम्प्रदायों की अधिक चर्चा न करके हमें यह स्वीकार करना होगा कि सूफी सम्प्रदाय भी भक्ति आंदोलन से प्रभावित हुआ।

कवीरदास लोक-जीवन के अधिक समीप थे। भक्ति-भावना में उनकी गहरी आस्था थी। यद्यपि सगुणोपासना मानने वाले रामानंद के वे शिष्य थे, परन्तु उन्होंने निर्गुण भक्ति-भाव को ही अपनाया और अपनी भक्ति-भावना को अद्वैत रूप से व्यक्त किया। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में कबीरदास संत परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। उनके अतिरिक्त नानक, दादू, रैदास, रज्जवदास, मलूकदास, सुन्दरदास आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। निम्नलिखित विन्दुओं के आधार पर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में कबीर के अवदान पर प्रकाश डाला जा सकता है–

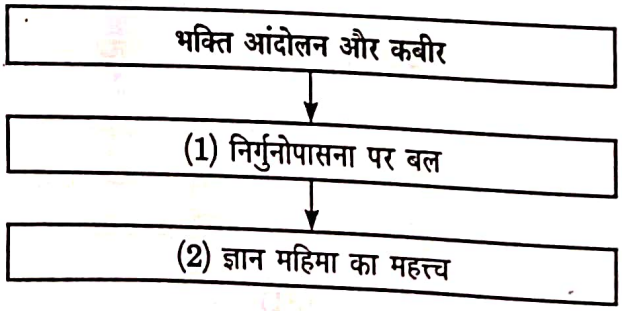

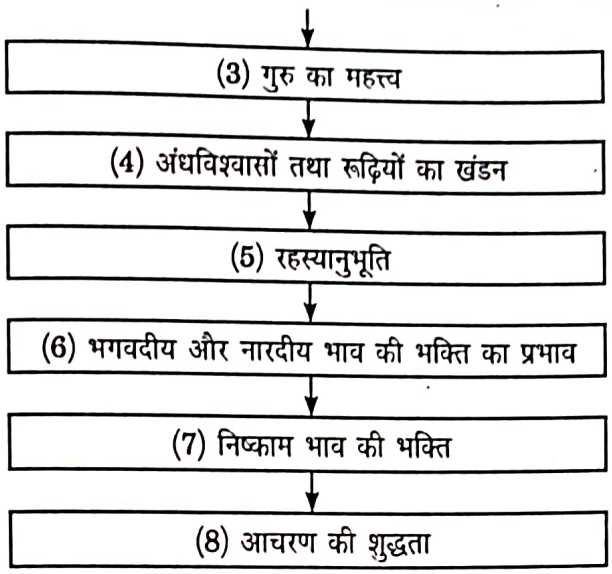


**1. निर्गुनोपासना पर बल**—कबीरदास निर्गुण ईश्वर में विश्वास करते थे। उनके काव्य की यह केन्द्रीय प्रवृत्ति है। यह तत्कालीन युग की आवश्यकता भी थी क्योंकि भक्ति आंदोलन काल संक्राति काल से गुजर रहा था। एक ओर मूर्ति पूजक हिन्दू थे तो दूसरी ओर मूर्ति भंजक मुसलमान थे। इसके साथ-साथ हिन्दू समाज आन्तरिक विषमताओं का भी शिकार बना हुआ था। वर्ण व्यवस्था के कारण शूद्रों की स्थिति दयनीय बन चुकी थी। अवतारवाद को बल मिल रहा था और देवी-देवताओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। फलस्वरूप मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा, पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड आदि को बल मिल रहा था। कबीरदास ने दोनों धर्म के बीच का रास्ता अपनाने का प्रयास किया। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए राम नाम के मर्म को जानने का उपदेश दिया। वे कहते भी हैं—

**दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।**
**राम नाम का मरम है आना।।**

इस प्रकार कबीरदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों के अजनबीपन को दूर करने के लिए निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति पर बल दिया। एक स्थल पर वे कहते हैं—

**अक्ष्य पुरुष एक पेड़ है निरंजन वाकी डार।**
**त्रिदेव शाखा बहे पात भया संसार।।**

कबीर का विचार था कि निर्गुण ब्रह्म जीवन-मृत्यु से परे है। वह अगम अगोचर होकर भी सर्वशक्तिमान है। उसका न कोई रूप है, न रंग है, न माता-पिता है, और न कोई जाति है। वह गूंगे के गुड़ के समान है तथा फूल की सुगन्ध और पानी से भी पतला है। उसे गुरु द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान से ही अनुभव किया जा सकता है। वह निर्गुण ब्रह्म प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करता है। उसे वाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। कबीर कहते हैं—

**कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढत बन माँहि।**
**ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखे नाँहि।**

**2. ज्ञान महिमा का महत्त्व**—कबीरदास ने अपनी वाणी में ज्ञान की महिमा का प्रतिपादन किया है। यह ज्ञान-महिमा निर्गुणोपासना से जुड़ी हुई है। सगुण की उपासना से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान चक्षु खुले बिना निर्गुण की भक्ति कैसी? परन्तु कबीरदास ने शास्त्रीय ज्ञान की चर्चा न करके आत्म-ज्ञान की चर्चा की जिसे साधना और अनुभव से प्राप्त किया जा सकता है। कबीरदास के पास ज्ञान की आँखें थीं, उच्च कोटि की सोच थीं तथा गुरु का सत्संग था। इसलिए उनका ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान कहा जा सकता है। एक स्थल पर वे कहते भी हैं—

**तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होइ रे।**
**मैं कहता हौं आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।**
**मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।**
**मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।**

कबीरदास ने पण्डितों और मौलवियों के कुकर्म देखे थे। भले ही वे पढ़े-लिखे थे, परन्तु कुएँ के मेंढ़क बने हुए थे। उन्होंने अपनी बुद्धि के बल पर समाज को तोड़ने का प्रयास किया, न कि जोड़ने का। कबीरदास ने इस समस्या को पहचानकर अपनी ज्ञान गरिमा के द्वारा ईश्वर को पहचानने, नाम-स्मरण करने तथा मानव के कल्याण आदि की ओर ध्यान दिया। डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने तो स्वीकार किया है कि कबीर के ज्ञान तत्त्व के अन्तर्गत ही इनका सुधारक रूप विद्यमान है।

**3. गुरु का महत्त्व**—कबीरदास ने अपनी वाणी में गुरु को विशेष महत्त्व दिया है। उनके विचारानुसार गुरु का स्थान भगवान से भी ऊँचा है। गुरु ही हमें मोह-माया, विषय-वासना तथा अज्ञानता से मुक्त कराता है। इस नश्वर संसार में गुरु ही सच्चा हितैषी है, क्योंकि उनकी कृपा से हमारे ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं। जिस पर भगवान कृपा करता है, उसी को सद्गुरु मिलता है। कबीरदास जी लिखते भी हैं—

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार,

**लोचन अनन्त उघाड़ियाँ, अनन्त दिखावणहार।।**

लेकिन जिस साधक को सच्चे गुरु की प्राप्ति नहीं होती, वे कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। आरम्भ में कबीरदास भी अन्य लोगों के समान वेद-विहित कर्म में संलग्न थे परन्तु मार्ग में उनको सद्गुरु मिल गए जिन्होंने ज्ञान का दीपक उनके हाथों में थमा दिया।

**पीछै लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।**
**आगैं थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।**

कबीरदास ने सद्गुरु से लौ लगाने की बात भी कही है क्योंकि गुरु ही साधक की शंकाओं को दूर करता है। सत्य तो यह है कि कबीरदास गुरु और ब्रह्म में अन्तर नहीं मानते। वे कहते भी हैं—

**गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यहु आकार।**
**आपा मेट जीव मरै, तो पावै करतार।**

कबीरदास ने गुरु और गोविन्द की तुलना करते हुए गुरु को श्रेष्ठ माना है। उसका कारण यह है कि उन पर नाथपंथियों और सूफियों का प्रभाव स्पष्ट है। मुस्लिम धर्म में पीर-पैगम्बर को अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि वही साधक को खुदा का रास्ता दिखाता है। दूसरी ओर सिद्धों और नाथों ने भी गुरु को विशेष आदर-मान दिया। एक स्थल पर कबीरदास कहते भी हैं—

**सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।**
**लोचन अनंत उघाड़ियाँ, अनंत दिखावणहार।।**

**4. अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों का खंडन**—भक्ति आंदोलन के प्रभाव के फलस्वरूप कबीरदास समाज- सुधारक बन गए। उन्होंने समाज में पनप रही तत्कालीन बुराइयों, अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों का खण्डन किया। सिद्धों और नाथों के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दू समाज जन्तर-मन्तर, जादू-टोना आदि में विश्वास करने लगा था। इसी प्रकार कठमुल्लाओं के प्रभाव के फलस्वरूप मुस्लिम समाज भ्रम जाल में फंसा हुआ था। प्रायः लोग जप, माला, छापा, तिलक, रोजा, नमाज आदि बाह्य साधनों को ही धर्म मानने लगे थे। ऐसे अवसर पर कबीरदास ने जनता के उद्धार के लिए एक समाज-सुधारक का रूप धारण कर लिया। वे छापा-तिलक लगाने वाले पाखण्डी साधुओं, सिर के बाल मुंडवाने वाले, नंगे पैर चलने वाले, रोजा नमाज रखने वाले तथा तीर्थ स्नान करने वाले लोगों को लगातार फटकारते रहे। पंडे-पुजारियों को भी उन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई। वे कहते भी हैं—

**मन रे संसार अन्ध कुहेरा।**
**सिरि प्रगटा जग का पेरा।।**
**वुत पूजि पूजि हिन्दू मूए तुरुक मूए हज जाई।**
**जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति किनहुँ न पाई।।**
**कवित पढ़ि पढ़ि कविता मूए कापड़ी के दौरै जाई।**
**केस लूंचि-लूंचि मूए बरतिया इनमैं किनहुँ न पाई।।**

कबीरदास ने माला के मनके फेरने को व्यर्थ बताया है। उनका कथन है कि जो लोग सच्चे मन से जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें भगवान अवश्य मिल जाता है।

मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए वे कहते हैं–

**पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।**
**ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।**
**दिन-भर रोजा रखत है, रात हनन हैं गाय।**
**एकहू बध एक बन्दगी, कैसी खुशी खुदाय।।**

× × × × × ×

**कांकर पत्थर जोड़ि कै, मस्जिद ली बनाय।**
**ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।**

**5. रहस्यानुभूति**–भक्ति आंदोलन के प्रभाव के फलस्वरूप कबीरदास ने अलौकिक प्रेम की अधिक व्यंजना की है। इसे रहस्यवाद कहा गया है। इस दृश्यमान जगत् में जो अदृश्यमान शक्ति है, वहीं अपनी इच्छानुसार संसार की रचना करती है और नष्ट भी करती है। उसके अनेक नाम हैं। कबीरदास ने विभिन्न रूपकों तथा प्रतीकों द्वारा उसी ईश्वर की चर्चा की है। मुस्लिम धर्म के प्रभाव के कारण कबीरदास को मूर्ति पूजा का खण्डन करना पड़ा। उन्होंने शरीर को नश्वर होने के कारण घट कहा और परमात्मा को सागर प्रकाश अथवा ज्योति कहा। वे अपनी रहस्यानुभूति की भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

**जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।**
**फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ गियानी।।**

कबीरदास ने दाम्पत्य प्रेम की कल्पना करके रहस्यानुभूति को सुन्दर रूप देने का प्रयास किया। वे भक्त और भगवान के बीच पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अनेक स्थलों पर वे कहते भी हैं–

**विरहनि अभी पन्थ सिरि, पन्थी बूझै धाइ।**
**एक सबद कहि पीव का, कबरे मिलेंगे आइ।।**

× × × × × × ×

**बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।**
**जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।**

जब जीवात्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है तो उसे अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। ऐसे स्थानों पर कबीर का रहस्यवाद चरम सीमा को पहुँच जाता है–

**लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।**
**लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।**

इसी को माधुर्य भाव की भक्ति भी कहा गया है, क्योंकि इसमें प्रेम तत्त्व की ही प्रधानता है। रागानुगा भक्ति को ही कबीर ने भाव भगाति या प्रेम भगाति कहा है, जो कि मूलतः नारदीय भक्ति पद्धति है जिसमें उपास्य और उपासक के बीच अनन्य प्रेम की प्रतिष्ठा की जाती है। इसीलिए कबीरदास कहते हैं–

**"जब लगि भाउभगति नहिं करिहौं,**
**तब लगि भवसागर क्यों तरिहौं।"**

**6. भगवदीय और नारदीय भाव की भक्ति का प्रभाव**–श्रीमद्भागवत् पुराण में नवधा भक्ति का उल्लेख किया गया है जिसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन के विविध भावों की चर्चा की गई है। किन्तु नारद सूत्र में ग्यारह भावों की चर्चा है। ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम को विविध भावों द्वारा व्यक्त किया गया है। एक स्थल पर वात्सल्य भाव के रूप में कबीर ने परमात्मा को पिता के रूप में और माता सम्बोधित किया है–

**कहै कबीर बाप राम राया, अबहूँ सरन तुम्हारी माया। (पिता के रूप में)**

× × × × × × × × × ×

**'हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन बकसहु मेरा।' (माता के रूप में)**

एक स्थल पर कबीर ने दास्य भाव की भक्ति को व्यक्त करते हुए स्वयं को कुत्ता तक कह दिया है–

**कबीर कुत्ता राम का मूतिया मेरा नाव।**
**गले राम की जेबड़ी जित खींचे तित जावैं।।**

× × × × × ×

**हम कुक्कुर तेरे दरबार।**
**भौंके आए बदन पसार।।**

कबीर की भाव-भक्ति की सबसे प्रमुख विशेषता प्रपत्ति है। कबीर स्वयं को अपने आराध्य के प्रति पूर्णतया तथा समर्पित कर देते हैं। कबीर का यह कहना–**"मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोरा।"** उनके सम्पूर्ण आत्मसमर्पण को व्यंजित करता है। इस सन्दर्भ में कबीर ने मृग, वीणा की स्वर लहरी, मछली, जल, कीट भृंगी आदि के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जैसे–

**जाति कुल ना लखें कोई सब भये भृंगी।**
**नदी नालै मिलै गंगै कहलावै गंगी।।**

**7. निष्काम भाव की भक्ति**–कबीरदास ने परमात्मा के प्रति निष्काम भाव की भक्ति को व्यक्त किया है। निष्कामता एक ऐसा तत्त्व है जो मध्यकालीन भक्ति भावना को वैदिक भक्ति भावना से अलग करता है। निष्काम भाव की भक्ति शुद्ध और सर्वोत्तम मानी गई है। जो व्यक्ति मन में किसी कामना को रखकर ईश्वर की भक्ति करता है, उसकी भक्ति निष्फल होती है। कबीरदास कहते भी हैं–

**जब लगि भगति सकामता तब लगी निरफल सेवा।**

निष्काम भक्ति के सन्दर्भ में ही एक प्रश्न उठता है कि कबीर की भक्ति का उद्देश्य क्या है? कबीर ने एक ही बात को बारम्बार कहा है कि भक्ति का उद्देश्य केवल आत्मा का परमात्मा से मिलन है। आत्मा का परमात्मा में एकाकार होना यही भक्ति का लक्ष्य माना गया है। कबीरदास ने कहा भी है–

**लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।**
**लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।**

कबीर के विचारानुसार निष्काम भक्ति सर्वश्रेष्ठ भक्ति है। भक्त को यदि परमात्मा के दर्शन हो जाएं तो वे उससे किसी भी वस्तु की माँग नहीं करेंगे। उनके मन में तो एक ही लगन है कि यदि उन्हें परमात्मा मिल जाएं तो उसे वे अपने अन्दर समेट लेंगे, इसी से भक्त को असीम आनन्दानुभूति होगी। इसका मतलब यह हुआ कि कबीर की भक्ति का लक्ष्य है आनन्दानुभूति प्राप्त करना जो कि परमात्मा के साथ एकाकार होने से प्राप्त होती है।

**8. आचरण की शुद्धता**–कबीरदास ने अपनी भक्ति पद्धति में आचरण की शुद्धता को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। उन्होंने प्रत्येक भक्त को सदाचार का पालन करने के लिए कहा है। कनक और कामिनी का त्याग करने से सदाचार प्राप्त हो सकता है। ये दोनों ही मानव मन में विकार उत्पन्न करते हैं और मानव के तीन सुखों का नाश करते हैं।

**नारी नसावै तीन सुख, जा वर पासै होये।**
**भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोय।।**

कबीरदास ने इन दोनों को भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना है। इनके सम्पर्क में आने पर मानव में विकार उत्पन्न होने लगते हैं और वह भक्ति से दूर होने लगता है। अतः कबीरदास ने भक्त को कनक और कामिनी से दूर रहने का उपदेश दिया है–

**एक कनक अरुकामिनी, दोऊ अगन की झाल।**
**देखन ते ही वदन जले, पास जाये हूँ पसाल।।**

आचरण की शुद्धता के लिए कबीर ने कुसंगति को त्यागने पर बल दिया है। कुसंगति भी भक्त के मन में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करती है। साधना मार्ग में यह सबसे बड़ी बाधा है। जो भक्त कुसंगति में रहता है, वह एकाग्र मन से प्रभु का स्मरण नहीं कर सकता। इसके विपरीत भक्त को साधुजनों की संगति करनी चाहिए। सज्जनों की संगति करने से मनुष्य शुद्ध आचरण करने लगता है और उसकी दुर्गति का नाश होता है तथा उसे सुमति प्राप्त होने लगती है।

कबीरदास कहते हैं–

**कबीर संगति साधु की, बेगि करी जै जाइ।**
**दूरमति दूरि गवाइ, सो देसी सुमति बताइ।।**

वस्तुतः कबीर की भक्ति स्वामी रामानन्द की भक्ति-भावना से अत्यधिक प्रभावित रही है। उन्होंने रामानन्द से राम के प्रति प्रेम का बीज भाव ग्रहण किया। वे वैष्णव परम्परा अथवा नारदी भक्ति से भी प्रभावित थे। यह बात अलग है कि उन्होंने राम के सगुण रूप को त्याग कर निर्गुण रूप को ग्रहण किया। इसके साथ-साथ उन्होंने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर सहज साधना के मार्ग को चुना और अपनी भक्ति-भावना में ज्ञान, योग तथा प्रेम भाव को जोड़कर एक ऐसा रसायन तैयार किया जो कि तत्कालीन हिन्दू समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके साथ-साथ उन्होंने नाथों, सिद्धों, सूफी सन्तों, जैनाचार्यों आदि से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। निश्चय से वे क्रांतिकारी युग पुरुष थे जिन्होंने भक्ति आंदोलन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणाम यह हुआ कि उनकी वाणी लोगों का कण्ठहार बन गई।

## . निर्गुण मत और कबीर

**निर्गुण मत का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए निर्गुण पंथी कबीर के विचारों पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**निर्गुण मत के परिप्रेक्ष्य में कबीर साहित्य का मूल्यांकन कीजिए।**

*अथवा*

**'निर्गुणोपासक कबीर' विषय पर एक सार गर्भित लेख लिखिए।**

**उत्तर–निर्गुण मतः अभिप्राय**–निर्गुण शब्द का अर्थ है–गुणरहित अर्थात् उस ईश्वर की भक्ति करना जिसका न कोई गुण है, न रंग है, न रूप है। महाभारत और श्रीमद्भागवत गीता में गुणरहित को ही निर्गुण कहा गया है। आगे चलकर जगद्गुरु शंकराचार्य ने ब्रह्म के लिए निर्गुण शब्द का प्रयोग किया जो कि जन्म-मरण रहित और गुणों से रहित है। नाथ सम्प्रदाय ने इस शब्द का प्रयोग हृदय में स्थित यौगिक ब्रह्म के लिए किया है। इससे स्पष्ट होता है कि संत कवियों से पूर्व निर्गुण शब्द का व्यापक प्रचार था। कबीरदास ने इसी निर्गुण शब्द को अपना लिया और अपने आराध्य ईश्वर को निर्गुण की संज्ञा दी। यह शब्द तत्कालीन इस्लाम के मत से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। मुस्लिम धर्म भी अपने आराध्य को निर्गुण-निराकार कहता है और मुस्लिम धर्म की दृष्टि का समन्वय कबीर के निर्गुण में हो जाता है। संत कवियों ने दो रूपों में निर्गुण शब्द का प्रयोग किया है–

1. द्वैताद्वैत विलक्षण परम तत्त्व।
2. हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म का रूप

संत कवि यारी साहब ने एक स्थल पर लिखा भी है–

**'सुगमन सेज परम तत रटिया किया निर्गुन निरंकार।'**

निर्गुण काव्यधारा के विकास में सिद्धों, जैन मुनियों, नाथों, वैष्णव भक्ति आंदोलन, महाराष्ट्र का संत सम्प्रदाय तथा इस्लाम धर्म आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु कबीरदास ने ही भक्तिकाल में निर्गुण काव्यधारा को बल प्रदान किया और व्यापक स्तर पर इसका प्रचार किया। इस संदर्भ में नामदेव का उल्लेख करना आवश्यक होगा जिन्होंने ब्रह्म के निर्गुण रूप की आराधना पर बल दिया था। इस मत को ज्ञानाश्रयी शाखा भी कहा गया है।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में भक्ति की धारा प्रवाहित हुई। यह धारा निर्गुण और सगुण दो धाराओं में विभक्त हो गई। निर्गुण सम्प्रदाय का भक्ति के प्रति महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उस युग के संत कवियों ने अंधकार रूपी अज्ञान में फंसे हुए लोगों को सही मार्ग दिखाया। नामदेव, कबीर, धर्मदास, रैदास, नानक, दादू, रज्जबदास, सुन्दरदास, मलूकदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख संत कवि हैं। इन सभी कवियों ने निर्गुण-निराकार ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया। कबीरदास इन सभी कवियों में अग्रणी हैं। संत काव्यधारा में उनका स्थान सर्वाधिक प्रमुख है। कबीर के निर्गुण सम्बन्धी विचारों को जानने के लिए सर्वप्रथम निर्गुण शब्द को समझना आवश्यक होगा।

**निर्गुण मत और कबीर**–एक जनश्रुति के अनुसार कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणा क गभ स हुआ था जो कि लोक-लाज के मारे शिशु कबीर को काशी के लहरतारा नामक तालाब की सीढ़ियों पर छोड़कर चली गई। नीरू और नीमा दम्पति ने कबीर का पालन-पोषण किया। कबीर की वाणी के आधार पर ही इनकी जाति जुलाहा मानी गई है। कबीर ने स्वयं कहा है–

**'तू ब्राह्मण, मैं कासी का जुलाहा चीन्हि न मोर गियाना।'**

कबीर के गुरु का नाम रामानन्द था, लेकिन कुछ विद्वान सूफी सन्त शेख तकी को इनका गुरु मानते थे। लोई और रामजन्या इनकी दो पत्नियाँ थी। उनकी एक पुत्री और दो पुत्र भी उत्पन्न हुए। एक पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। अनेक स्थलों पर कबीरदास ने स्वीकार किया है कि वे शिक्षित नहीं थे। वे कहते भी हैं–

**मसि कागद छुओ नहिं, कलम गहि नहि हाथ।**

जहाँ तक कबीर के जन्म का प्रश्न है, यह आज भी विवादास्पद बना हुआ है। चरित्र बोध के आधार पर उनका जन्म संवत् 1455 माना जाता है। अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह उचित ही प्रतीत होता है।

कबीरदास मूलतः जुलाहे का काम करके अपनी आजीविका चलाते थे, लेकिन उन्होंने अपना अधिकांश समय देश भ्रमण और साधु-संगति में व्यतीत किया। उन्होंने जगन्नाथपुरी, बगदाद, गुजरात आदि की यात्राएँ कीं परन्तु इतना निश्चित है कि उनके सिद्धान्तों पर स्वामी रामानन्द का काफी प्रभाव है। उन्होंने गुरु को सद्गुरु की संज्ञा दी और यह घोषणा की कि गुरु की कृपा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। कबीरदास ने अनेक स्थलों पर गुरु की महिमा का गान किया है। एक स्थल पर वे कहते हैं–

**'सतगुरु लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।**
**एक जू बाह्यां प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।।**

निर्गुण मत संबंधी कबीर के विचारों का विवेचन हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं–

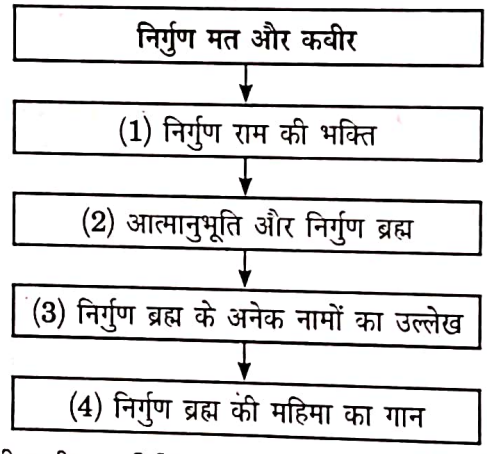


**1. निर्गुण राम की भक्ति**–भले ही कबीर पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा हो, परन्तु उन्होंने अनुभव और साधना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि निर्गुण ब्रह्म ही इस सृष्टि का मूल कारण है। उनके ब्रह्म सम्बन्धी विचारों पर उनकी आत्मानुभूति और आत्मचिंतन का प्रभाव देखा जा सकता है। भले ही निर्गुणवाद भारतीय दर्शन से मेल खाता हो परन्तु हिन्दी साहित्य में निर्गुण शाखा के प्रवर्त्तक कबीरदास ही हैं। उनका निर्गुण सम्बन्धी चिंतन विशुद्ध निर्गुणवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस पर जहाँ एक ओर वैष्णव भक्ति का प्रभाव है, वहाँ दूसरी ओर इस्लाम का भी प्रभाव है, लेकिन कबीर के निर्गुण सम्बन्धी विचार काफी मौलिक प्रतीत होते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

1. **पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।**
   **कहवे की शोभा नहीं, देख्या ही परमान।**
2. **अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।**
   **त्रिदेव शाखा भये, पात भया संसार।।**

कबीर के निर्गुण राम अविगत हैं भले ही उन्होंने राम शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। परन्तु राम से उनका अभिप्राय निर्गुण-निराकार ब्रह्म से है। वेद, पुराण, स्मृति, व्याकरण, शेष, गरुड़ और कमला भी उस निर्गुण राम को नहीं जानते।

कबीर का कहना है कि निर्गुण राम का जाप करने से ही साधक का कल्याण हो सकता है। वे कहते भी हैं–

**निर्गुण राम जपहु, रे भाई। अविगति की गति लखि न जाई।।**
**चारि वेद जाके सुमृत पुराना। नौ व्याकरणां मरम न जाना।।**
**सेसनाग जाके गरुड़ रामाना। चरण-कँवला कँवल नहि जाना।।**
**कहैं कबीर जाकै भेदे नाहीं। निज जन बैठे हरि की छांही।।**

**2. आत्मानुभूति और निर्गुण ब्रह्म**–कबीरदास ने स्वयं ब्रह्म की साधना की और निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार किया, परन्तु इसका श्रेय वे अपने गुरु को देते हैं जिन्होंने कबीरदास को ज्ञान का प्रकाश दिया। कबीर ने अनेक स्थलों पर दृढ़तापूर्वक कहा है कि उनका उद्देश्य निर्गुण ब्रह्म पर विचार करना है। उसकी साधना से ही साधक को मुक्ति मिल सकती है परन्तु निर्गुण पर विचार करना कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गोबिन्द कृपा होती है, उसी का मन निर्गुण ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। जहाँ तक निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रश्न है उसके बारे में कुछ भी कहना कठिन है। वह तो गूंगे का गुड़ है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का अनुभव ऐसा अनुभव है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक स्थल पर वे निर्गुण विचारधारा को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

**"जल से कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।**
**फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना इहि तम कथ्यो ज्ञानी।"**

डॉ. सर्वनाम सिंह ने कबीर के निर्गुण के बारे में लिखा भी है–"उसी अद्वैत तत्त्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है। पार ब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खालिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत तत्त्व की ओर संकेत करते हैं। वह गुणविहीन है। उसका न कोई रूप है, न रंग है, उसमें न ही देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि वह निर्गुण और निराकार है।"

**3. निर्गुण ब्रह्म के अनेक नामों का उल्लेख**–इसमें कोई संदेह नहीं है कि निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते समय कबीरदास ने अनेक नामों का उल्लेख किया है। इन नामों में राम और हरि शब्दों के प्रयोग को लेकर कुछ भ्रम हो सकता है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता है कि वे राम शब्द का प्रयोग करके विष्णु के अवतारवाद का समर्थन कर रहे हैं। उन्होंने तो केवल नाम-स्मरण के लिए ही इन नामों का सहारा लिया है। यह भी संभव है कि उन्होंने स्वामी रामानन्द के प्रभाव से राम शब्द का प्रयोग किया हो। इस भ्रांति को दूर करने के लिए वे एक स्थल पर कहते भी हैं–

**दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना।**
**राम नाम का मरम है आना।।**

भले ही तीनों लोकों में राम को दशरथ का पुत्र कहा गया हो। लेकिन मेरे राम का मरम कुछ और है। मेरे राम निर्गुण-निराकार हैं। यही कारण है कि उन्होंने निरंजन और अलख नाम से ब्रह्म को वार-बार याद किया। कबीरदास स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म के स्वरूप को कोई पहचान नहीं सका और जो उसे पहचान लेता है वह निर्गुण ब्रह्म के समान हो जाता है। कबीरदास यह भी कहते हैं कि प्रायः लोग ब्रह्म के ऊपरी रूप को देखते हैं। उसके असल तत्त्व को नहीं समझ पाते जिसके फलस्वरूप वे निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते। एक स्थल पर वे लिखते हैं–

**"न जानै साहब कैसा है।**
**मुल्ला होकर बाँग जो देवे,**
**क्या तेरा साहब बहरा है।**
**कीड़ी के पग नेवर बाजे,**
**सो भी साहब सुनता है।**
**माला फेरी तिलक लगाया,**
**लम्बी जटा बढ़ाता है।**
**अन्तर तेरे कुफर-कटारी,**
**यों नहीं साहब मिलता है।"**

कबीर ने उस निर्गुण ब्रह्म को अनिर्वचनीय तत्त्व कहा है। वह केवल अनुभूतिजन्य है। वह कहने-सुनने की वस्तु नहीं हैं। उसका कोई आकार-प्रकार भी नहीं है। कबीर का निर्गुण ब्रह्म दुनिया का परम तत्त्व है। वह स्वयं सारे संसार में व्याप्त है। उसके हाथ-पैर नहीं हैं। वह सत्, रज्, तम् आदि गुणों से भी परे है। उसका जाप नहीं हो सकता। उसका आदि अन्त कहीं नहीं है। कबीरदास निर्गुण ब्रह्म को निर्गुण-निराकार कहते-कहते यह भी कहने लगते हैं कि वह न पृथ्वी है, न आकाश है, न अग्नि है और न पानी। न वह किसी नदी में है, न सागर की लहरों में। वह पाप-पुण्य से भिन्न है। वेद-पुराण से भिन्न है और शास्त्रों से परे है। वह असीम है, परन्तु सर्वव्यापक है। कबीर की यह सम्पूर्ण व्याख्या आत्मानुभूति का परिणाम कहा जा सकता है। **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने कबीर के निर्गुणवाद के बारे में कहा भी है—**"परन्तु यह राम या हरि कौन है? परब्रह्म, अपरब्रह्म, ईश्वर और कुछ? इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हरि, गोविन्द, राम, कृष्ण, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों को कबीरदास क्वचित्, कदाचित् ही सगुण अवतार के अर्थ में व्यवहार करते हैं। एक दम नहीं करते, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर जब वे अपने पर उपास्य को इन नामों से पुकारते हैं तो सगुण अवतारों से उनका मतलब नहीं होता।"**

**4. निर्गुण ब्रह्म की महिमा का गान**—कबीर का निर्गुण ब्रह्म महिमाशाली है। उसकी शक्ति, प्रभाव तथा प्रकाश तक कोई भी नहीं पहुँच सकता। वह असीम है। लेकिन कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म से मधुर सम्बन्ध की स्थापना की है। प्रेमी-प्रेमिका के रूपक द्वारा वे मधुर मिलन और विरह की बातें करने लगते हैं। कबीर ने अपने ब्रह्म से प्रियतम का सम्बन्ध स्थापित किया और उसके प्रति अपने प्रेम की व्यंजना की। एक स्थल पर कबीर की आत्मानुभूति विरहिणी का रूप धारण कर लेती है। वे स्वयं को ब्रह्म की नारी मानने लगते हैं। वे कहते भी हैं—

**"बालम आउ हमारे गेह रे।**
**तुम बिन दुखिया देह रे।**
**सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोको यह सन्देह रे।**
**एकमेकह्वे सेज न सौवे तब लगि कैसा स्नेह रे।**
**अन्न न भावै नींद न आवै, जिह बन धरै न धीर रे।"**

× × × × × × ×

**अब तो बेहाल कबीर भयौ है देखे जिव जाय रे।।**

यहाँ कबीरदास की आत्मानुभूति चरम सीमा को पहुँच गई है। कबीर विरहिणी के रूप में अपने प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) का आत्मसाक्षात्कार करने के लिए अत्यधिक व्याकुल है। लेकिन कबीर यह बात बार-बार कहते हैं कि ब्रह्म आडम्बरों से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। पत्थर पूजने से यदि ब्रह्म मिल जाता तो कबीर भी ऐसा ही करते। लेकिन यह तो मात्र भ्रम फैलाना है। वह निर्गुण ब्रह्म बहरा नहीं है जो मुल्ला की जोर की आवाज ही सुन सकता है। कबीरदास स्वीकार करते हैं कि निर्गुण, ब्रह्म को पाना कोई आसान काम नहीं है। वे कहते हैं—

**यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।**
**सीस उतारे भुई धरै, तब बैठे धर माहिं।।**

कबीर के अनुसार साधना का क्षेत्र ही प्रेम का क्षेत्र है। प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। यह कोई मौसी का घर नहीं है। अतः इस प्रेम को प्राप्त करना आसान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति निर्गुण ब्रह्म के प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए पहले अपने सिर को उतारना पड़ता है अर्थात् अपने अहं को मारना पड़ता है। 'शीश उतारने' का अर्थ है—अहम् का विनाश। तभी साधक निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। अहं और परम ब्रह्म एक साथ नहीं रह सकते।

◆◆◆

निम्नलिखित दोहों में कबीर के निर्गुण सम्बन्धी मौलिक विचार देखे जा सकते हैं–

1. **"लोका जानि न भूलौ भाई।**
**खालिक, खलक, खलक में खालिक सब घर रह्यो समाई।"**

2. **"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।**
**राम नाम का मरम है आना।"**

◆◆◆

## 4. मध्यकालीन धर्म साधना और कबीर

**मध्यकाल में प्रचलित विभिन्न धर्म और तत्वसंबंधी कबीर की विचारधारा का उल्लेख कीजिए।**

*अथवा*

**मध्यकालीन धर्म-साधना में कबीर का स्थान निर्धारित कीजिए।**

**उत्तर–मध्यकालीन धर्म साधना एवं कबीर–**कबीर युग में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचार हो रहा था और भारत में धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में काफी विषमताएँ थीं। एक ओर तो शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध आदि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय पारस्परिक वाद-विवादों के कारण एक-दूसरे की आलोचना कर रहे थे। दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारियों ने देश के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण पर कठोर प्रहार किया। तत्कालीन सामान्य मानव आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से काफी पिछड़ चुका था। इन विषम परिस्थितियों में कबीर जैसे अलौकिक पुरुष का अवतरण हुआ और उन्होंने तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों के विरुद्ध शंखनाद किया और अपने मौलिक एवं धार्मिक, विचार प्रस्तुत किए। जहाँ एक ओर परंपरागत धार्मिक रूढ़िवादियों ने उनका कट्टर विरोध किया वहीं दूसरी ओर तत्कालीन शासकों ने उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए। किन्तु कबीरदास अपने विचारों पर अडिग रहे तथा जनता में अपने मौलिक विचारों का प्रचार किया। फलस्वरूप जन-साधारण ने भी उनके धार्मिक विचारों का स्वागत किया। **डॉ. हरिहर त्रिवेदी** के शब्दों में–**"कबीर की अन्तर्दृष्टि सत्यान्वेषी है और उनके स्वानुभव गहरे हैं। उनकी रहस्यमयता भी स्वाभाविक सरलता से ओत-प्रोत है। वे एक उज्ज्वल भविष्य-द्रष्टा के रूप में समाज सुधारक थे। सामाजिक पाखण्डों और चिरकाल से व्याप्त रूढ़ियों पर उन्होंने अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से तीक्ष्ण प्रहार किए, वैसे ही कर्ममार्ग पर भी, जिसके विरोध का श्रीगणेश उनके समय से पूर्व ही हो चुका था। अध्यात्म, सामाजिक दर्शन, धर्म आदि सभी विषयों में उनकी पैठ अगाध और अप्रतिहत है।"**

मध्यकाल में प्रचलित विभिन्न धर्म एवं तत्संबंधी कबीर की विचारधारा का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

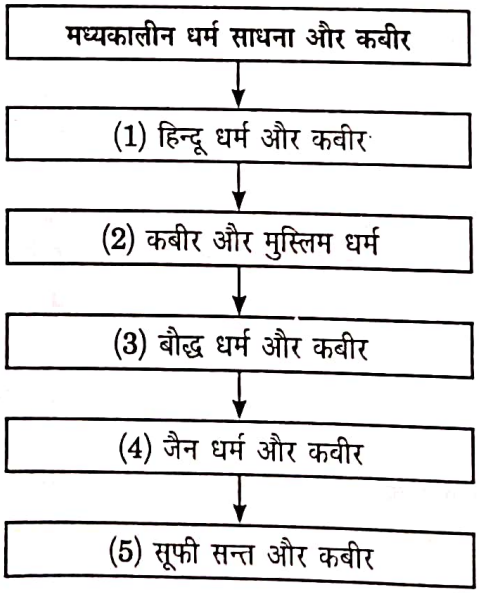

**1. हिन्दू धर्म और कबीर**—कबीरदास ने तत्कालीन हिंदू धर्मावलम्बियों शैव, वैष्णव, जैन, नाथ आदि में अनेक विकार देखे। उन्होंने हिन्दू सम्प्रदाय के अनुयायियों को रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों से मुक्त करने का भरसक प्रयास किया। ये सभी सम्प्रदाय परम्परागत रूढ़िगत सिद्धान्तों का पालन कर रहे थे। विशेषकर पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत में प्रचलित धर्म मत-मतान्तरों, परस्पर विरोधी आचरणों तथा विचारधाराओं के कारण धर्म का मर्म उलझ कर रह गया था अथवा कह सकते हैं कि इन सम्प्रदायों का धार्मिक अधोः पतन हो चुका था। तत्कालीन विचारधाराओं का उल्लेख करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है—

(क) नाथ सम्प्रदाय की आत्मानुभूति तथा योग साधना

(ख) विट्ठल सम्प्रदाय की प्रेम भावना

(ग) स्वामी रामानन्द की भक्ति साधना

(घ) सूफी मत की रहस्यवादी मादकता

(ङ) वेदान्त के एकेश्वरवाद की मान्यता।

कबीर ने आत्मानुभूति द्वारा उपर्युक्त विचारधाराओं का अपनी अभिव्यक्ति में सहज समन्वय करने का प्रयास किया है। एक पद्य में वे कहते भी हैं—

**सन्तों सहज समाधि भली,**
**साईं से मिलन भयो जा दिन तें, सूरतन अन्त चली।**
**आंखिन मूदूँ, कान न रुंधू काया कष्ट न चारुं,**
**खुले नैन में हंस-हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं।**
**कहूं सो नाम, सूनूं सो सुमिरन, जो कुछ करौ सो पूजा,**
**विरह उद्यान एक सम देखूं भाव मिटाऊँ दूजा।।**
**जहं-जहं जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कुछ करौ सो सेवा,**
**जब सोऊँ तव करूं दंडवत, पूजूं और न देवा।**
**सबद निरंतर मनुआँ राता मलिन वासना त्यागी,**
**उठत बैठत यह उन्मनि रहनी, सो परगट कर गाई।**
**सुख दुख के इक परे परम सुख मोहि में रमा समाई।।**

कबीर की वाणी का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे तत्कालीन धर्मों और मतों से कुछ सीमा तक प्रभावित थे। उनकी आस्था कर्मवाद एवं जन्मान्तरवाद में भी देखी जा सकती है। उन्होंने सृष्टि रचना के बारे में भी चिंतन किया और साथ ही ऐसे विराट पुरुष की कल्पना की, जिसकी सेवा में हमेशा चन्द्र, सूर्य, वायु, ब्रह्म, शिव, दुर्गा, वासुकि आदि सभी संलग्न हैं। यही नहीं, उन्होंने पौराणिक भक्तों के भी नाम लिए हैं। वैष्णवों को तो वे अपना संगी बतलाते हैं। यही नहीं उन्होंने हरिजनों की पनिहारनों को राजाओं की रानियों से ऊँचा दर्जा दिया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वे नारदी भक्ति में मग्न रहते हैं। यदि कबीर वाणी का गहराई से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव धर्म का जन्मान्तरवाद, कर्मवाद और भक्तिवाद, नाथ पंथियों का भोगवाद, जैनियों का अहिसावाद, सहजमानियों का सहजवाद, मुसलमानों का एकेश्वरवाद तथा सूफियों का रहस्यवाद आदि सब कुछ उनकी वाणी में सम्मिलित हैं। यह भी कहा जा सकता है कि कवीरदास तत्कालीन विविध सम्प्रदायों तथा साधनाओं से निश्चय से प्रभावित थे। इस सन्दर्भ में **आचार्य दिति मोहन सेन** ने लिखा भी है—**"कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वासग्राही है। यह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती, इसलिए वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नहीं। इसलिए उन्होंने हिंदू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी, प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।"**

**2. कबीर और मुस्लिम धर्म**—कबीर कालीन शासक इस्लाम धर्म को मानते थे। मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवाद ने निश्चय से कबीर को प्रभावित किया। इससे पता चलता है कि कबीर के मन में किसी धर्म के प्रति द्वेष नहीं था। उनकी वाणी सत्य के अनुभव पर आधारित है। सत्यनिष्ठा में विश्वास करने के कारण ही उन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त संकीर्णता को दूर करने का प्रयास किया। चाहे हिन्दू धर्म हो या मुस्लिम धर्म, कबीर ने दोनों के मिथ्याचरण पाखण्ड तथा बाह्य आडम्बरों पर कठोर प्रहार किया। वस्तुतः वे सत्य के खोजी थे और तर्क शक्ति द्वारा निर्गुण-निराकार ईश्वर के बारे में चिंतन करते थे। कबीर ने अनुभव किया कि इस्लाम धर्म के अनुयायी रोजा, नमाज तथा हलाल जैसी रूढ़ियों के शिकार बने हुए हैं। उन्होंने यदि हिन्दू धर्म की रूढ़ियों पर

कठोर प्रहार किए। तो इस्लाम धर्म के बाह्य आडम्बरों पर भी करारे व्यंग्य किए। एक विद्वान के अनुसार कबीरदास इस्लाम धर्म की कट्टरता के प्रति अधिक असहिष्णु नहीं थे परन्तु हिन्दू धर्म के प्रति वे अत्यधिक कठोर थे। मुसलमानों के लिए कबीर ने तुर्क शब्द का प्रयोग किया है। चाहे काजी हो, मुल्ला, शेख अथवा दरवेश, सभी को उन्होंने तुर्क शब्द द्वारा संबोधित किया है। कबीर ने अनेक स्थलों पर मुस्लिम धर्म के बाह्य आडम्बरों पर प्रहार किया। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

**कंकर पत्थर जोड़के मस्जिद लई बनाय,**
**ना चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाए।।**

इसके साथ-साथ कबीरदास ने असंतुष्ट शेखों के हज करना तथा काजी द्वारा पाँच बार मस्जिद पर चढ़कर नमाज की आवाज लगाना और गऊ हत्या करके मांस भक्षण करना आदि प्रवृत्तियों की भी घोर निंदा की है। इस्लाम के तथाकथित ठेकेदार काजियों को वे पथभ्रष्ट कहते हैं। चाहे काजी हो या मुल्ला हो, ये सभी भ्रमित हैं। उनके दिल में कोई दीन नहीं है क्योंकि वे हाथ में तलवार लेकर निरीह जानवरों का वध करते हैं और हिन्दुओं पर भी अत्याचार करते हैं। साथ ही उन्होंने मुसलमानों के पाखण्डों का भी पर्दाफाश किया है। वे कहते भी हैं–

**काजी मुलां भ्रमिया चल्या दुनी कै साथि**
**दिल थे दीन बिसारिया करद लई जब हाथि।।**
**यह सब झूठी बंदिगी विरिथा पंच निवाज।**
**साचै मारे झूठि पढ़ि काजी करै अकाज।।**
**मुल्लाओं के बाह्याचारों के प्रति क्रोधित होकर वे यह भी कहने लगते हैं–**
**मीयां तुमसो बोल्या नहि बणी आवै।**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर ने इस्लाम धर्म की परम्पराओं तथा इस्लाम धर्म के प्रति कभी विश्वास नहीं किया क्योंकि उनका पालन-पोषण इस्लामी परिवार में हुआ अतः उनके विचारों पर इस्लाम धर्म का थोड़ा बहुत प्रभाव जरूर पड़ा।

**3. बौद्ध धर्म और कबीर**–मध्य युग में भी बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान दोनों शाखाओं का कहीं-कहीं प्रभाव विद्यमान था। ये दोनों सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में संलग्न थे। कबीरदास इस धार्मिक सम्प्रदाय से अछूते नहीं रहे। इतना तो निश्चित है कि नाथ पंथ का प्रादुर्भाव बौद्धों और सिद्धों में उत्पन्न विकारों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, लेकिन फिर भी नाथ सम्प्रदाय इन दोनों सम्प्रदायों से थोड़ा बहुत प्रभावित रहा। भले ही इसमें अभी अनुसंधान की आवश्यकता है। परन्तु इतना निश्चित है कि कबीर युग में नाथ सम्प्रदाय का काफी प्रचार हो रहा था। यही कारण है कि कबीरदास ने बौद्धों के समान वेदों तथा उपनिषदों के अंधानुकरण का विरोध किया। गुरु महिमा का ज्ञान करते हुए वे कहते हैं–

**पीछे लागा जाइ था लोक वेद के साथ,**
**आगे ते सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथ।**

वौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों को वौद्ध धर्म की सभी शाखाओं में समाहित देखा जा सकता है।

बौद्धों के दुःखवाद, निरोध, मार्ग के सत्य आदि का विवेचन कबीर ने भी अपनी वाणी में किया है। एक स्थल पर कबीरदास कहते हैं–

**धावत जेनि जनमि भ्रमि था क्यों,**
**अब दुःख करि हम हार्‌यो रे।।**
**इसी प्रकार कर्म विपाक को भी कबीरदास ने स्वीकार किया है–**
**कर्म फांस जग जाल पसारा,**
**ज्यों धीवर मछली गहि मारा।।**

कवीर वाणी में समुदाय तथा आर्य सत्य के भी अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। कबीर ने भी संसार में दुःख का कारण माया तथा तृष्णा को माना है। यही नहीं, वौद्धों धर्म के 'निरोध' के सिद्धान्त से प्रभावित होकर कबीर ने दुःख के निरोधात्मक मार्ग से सम्वन्धित साधनात्मक प्रणाली का प्रतिपादन किया।

यथा–

**जैसें माया मन रमै, यूं जे राम रमाई।**
**तारा मंडल छाड़ करि, जहां कैसा तहां जाई।।**
**मोहि आग्या दई दयाल दया करे, काहू को समझाइ।**
**कहै कबीर मैं कहि कहि हार्‌यो अब मोहि दोस न लाइ।**

इसी प्रकार उन्होंने बौद्धों के क्षणवाद और रहस्यवाद का भी समर्थन किया। इनके बारे में कबीर की अपनी कुछ मौलिक धारणाएँ भी हैं। कबीर ने बौद्ध धर्म के मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए ईश्वर के प्रति अपनी आस्था और विश्वास को व्यक्त किया। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

**जहां बोल वहं आखर आवा, जहं अबोल तहं मन न रहावा।**
**बोल अंबोल मध्य है सोई जोहँ सो कछु लखै न कोई।**

सच्चाई तो यह है कि बौद्ध धर्म के अनेक विचारों को कबीर ने स्वीकार किया, लेकिन उनके अनीश्वरवाद का विरोध किया। यहां इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि कबीर के काल में बौद्ध धर्म का सम्पूर्ण पतन हो चुका था। केवल सिद्धों और नाथों के सम्प्रदायों में बौद्ध परम्पराएँ और विचारधाराएं सुरक्षित थीं। कबीर ने इन्हीं के माध्यम से बौद्ध धारणाओं तथा सिद्धान्तों को ग्रहण किया लेकिन कबीरदास ने किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय का अन्धानुकरण नहीं किया। उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रत्येक सिद्धान्त पर चिंतन किया और अपने अनुभव के आधार पर उसे ग्रहण किया।

**4. जैन धर्म और कबीर**–मध्यकालीन भारत में बौद्ध और जैन एक-दूसरे के काफी समीप आ चुके थे। भले ही इन दोनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों में काफी मतभेद हैं परन्तु फिर भी तत्कालीन वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप दोनों के सिद्धान्तों में एक प्रकार का समन्वय देखा जा सकता है। मध्यकालीन युग में जैन साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि जैन कवि तथा विचारक भक्ति के प्रति आकृष्ट हो चुके थे। फलस्वरूप जैन मतावलम्बी अपनी साधना पर भक्ति का आवरण चढ़ाने लगे। कबीरदास जैन सिद्धान्तों और आचार प्रणालियों से पूर्णतया परिचित थे। यही कारण है कि कबीर के भक्ति मार्ग तथा अहिंसा सिद्धांतों पर जैन सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है। कबीर ने अनुभव किया कि भले ही जैन लोग अहिंसा होने का दावा करें परन्तु उनकी अहिंसा हिंसक थी। इसीलिए उन पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

**पाडौसी सी रुसणां, तिल तिल सुख की हांणि।**
**पंडित भए सरावगी पाणीं पीवे छांणि।।**

परंतु कबीरदास ने अत्यधिक तप, व्रत तथा उपवास को मात्र धोखा कहा है। मुक्ति के इस मार्ग को कबीरदास ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने केवल जैन धर्म के सिद्धान्तों को अंश रूप में माना जिसके द्वारा बंधनों से मुक्ति पाई जा सकती है। जैन कवियों के अपने भाव, निरंजन भाव की अभिव्यंजना कबीर के कथनों में परिलक्षित है। इससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म की अहिंसा तथा कर्म सिद्धांतों का कबीर की वाणी पर काफी प्रभाव पड़ा है। लेकिन कबीर ने जैन सम्प्रदायों की रूढ़ियों, बाह्य आडम्बरों पर भी कटु प्रहार किया और अपने मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया।

**5. सूफी सन्त और कबीर**–कबीर पर इस्लाम धर्म का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन सूफी सम्प्रदाय और सूफी सन्तों ने उनको अत्यधिक प्रभावित किया है। इसका कारण यह है कि सूफी सम्प्रदाय इस्लाम धर्म का शुद्धिकरण है। दूसरा सूफी सन्तों ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के अजनबीपन को दूर करने का प्रयास किया। वे न तो हिन्दू धर्म के कट्टर विरोधी थे और न ही हिंसा में विश्वास करते थे। फिर भी कबीर ने सूफी सन्तों के केवल कुछ सिद्धान्तों को ग्रहण किया और सूफियों के शर्प और शुक के बदले राम तथा रसायन की चर्चा की–

**राम रसायन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।**
**कबीर पीवण दुर्लभ है मांगे सीस कलाल।।**

इसके अतिरिक्त कबीर ने सूफियों का अनुकरण करते हुए शुद्ध सात्विक प्रेम की चर्चा की। उनका कथन था कि जिस हृदय में प्रेम नहीं है और जिह्वा पर राम नहीं है। उस व्यक्ति का इस संसार में उत्पन्न होना व्यर्थ है।

**जिहि घट प्रीत न प्रेम रस पुनि रसना नहि राम।**
**ते नर इस संसार में उपजि भए बेकाम।।**

उनकी वाणी में कुछ स्थलों पर सूफी सिद्धान्तों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। भले ही सूफी मत का उद्भव इस्लाम धर्म से हुआ है। परन्तु उन्होंने वेदान्त के आत्मवाद तथा बौद्ध और शैव की साधना तथा सहजवाद को भी ग्रहण किया था। इसीलिए वे भारत में अपने मत का प्रचार करने में सफल रहे। कबीर पर सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव प्रत्यक्ष नहीं केवल परोक्ष था। कबीरदास ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म में समन्वयवाद करने का जो प्रयास किया, वह सूफी सम्प्रदाय के प्रभाव के फलस्वरूप है परन्तु यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि जहाँ सूफी सन्तों ने मण्डनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया वहाँ कबीरदास ने खण्डनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए यही कार्य करने का प्रयास किया परन्तु वे सफल नहीं हो पाए बल्कि उन्होंने हिन्दुओं को भी नाराज कर दिया और मुसलमानों को भी। कबीर के विचारों पर सूफी धर्म का काफी प्रभाव देखा जा सकता है। एक उदाहरण देखिए जिस पर सूफी प्रभाव स्पष्ट है–

**दरोगा पड़ि-पड़ि खुसी होई वेखवर वादुव काहि।**
**इक सचु खालुक खलक मिआने सिआम मूरति नाहि।।**
**अलाह पाक-पाक है सव करउ जे दूसर होई।**
**कवीर करम करीम का उहु करे जानै सोई।।**

इस प्रकार देखते हैं कि कवीर की वाणी पर वैष्णवों, शैवों, नाथ, पंथियों, बौद्धों, जैन, सिद्धों तथा सूफी सन्तों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। परन्तु कवीर ने इन धार्मिक सम्प्रदायों का कहीं पर भी अंधानुकरण नहीं किया। जहाँ कहीं उन्हें अनुकूल मौका मिला, उन्होंने इन धार्मिक सम्प्रदायों की रूढ़ियों तथा बाह्य आडम्बरों पर कटु प्रहार किए। उनका लक्ष्य था तत्कालीन समाज को सही रास्ते पर चलाना। ऐसा करते समय उन्होंने साधुओं को भी नहीं छोड़ा। वे कहते भी हैं–

**"माला तिलक लगाइ कै भक्ति न आई हाथ।**
**दाढ़ी मूछ मुड़ाइ कै, चले दुनी के साथ।।**
**दाढ़ी मूछ मुड़ाई के, हूहा घोटम घोट।**
**मन को क्यों नहीं मूंडिये, जा मे भरिया खोट।।**
**केसन कहा बिगरिया, जो मूड़ौ सौ बार।**
**मन को क्यों नहीं मूंडिये, जा में विषै विकार।।"**

संक्षेप में कह सकते हैं कि कवीर ने विभिन्न धर्मों से बहुत कुछ ग्रहण किया। लेकिन सभी धर्मों के अन्धविश्वासों, पाखण्डों तथा बाह्य आडम्बरों का कड़ा विरोध भी किया। उनका यह विरोध किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं था। उन्हें जहां कहीं मिथ्याचार दिखाई दिया, उसका डटकर विरोध किया। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के जप, तप, सन्ध्या-वन्दना, माला, तीर्थाटन, बलि, तिलक आदि का खण्डन किया, दूसरी ओर मुसलमानों के रोजा, नमाज, हलाल आदि की भी खिल्ली उड़ाई। अन्य वर्गों जैनों, बौद्धों, नाथों, शाक्तों आदि को भी नहीं छोड़ा।

◆◆◆

## . कबीर का समय

**कबीर के समय (युग) पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।**

*अथवा*

**कबीर कालीन परिवेश की समीक्षा कीजिए।**

*अथवा*

**कबीरकालीन परिस्थितियों पर विचार कीजिए।**

**उत्तर–कबीर का समय**–साहित्य के दीर्घकालीन इतिहास में मध्य-युग का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें ज्ञानाश्रयी धारा के प्रवर्त्तक सन्त कबीरदास का व्यक्तित्व अद्भुत तथा विलक्षण है। किसी भी साहित्यकार या कवि का व्यक्तित्व तत्कालीन परिस्थितियों की उपज होती है तथा उसका कृतित्व युगीन प्रतिछाया। कबीरदास को युग-चेतना का जनवादी भक्त कवि स्वीकार

किया गया है। कबीर की वाणी पर रीझ कर विद्वानों ने उसे धर्म-गुरु, समाज-सुधारक, लोक-स्रष्टा, भविष्य-द्रष्टा, दार्शनिक, कर्मयोगी, भक्त कवि आदि विशेषणों से अलंकृत किया है। वस्तुतः महापुरुष युग विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पन्न होते हैं तथा वे सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करते हैं, जिससे समाज में मानव-मूल्यों का महत्त्व भी निर्धारित होता है। संत कवि कबीरदास का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से उनके युग और युगीन परिस्थितियों की उपज है। उस युग में विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तरों में विश्वास रखने वाले और अपनी-अपनी खिचड़ी पकाने वाले तथाकथित गुरुओं, ज्ञानी-ध्यानियों ने हिन्दू समाज के लोगों को भ्रम में डाला हुआ था। कबीर ने ऐसे गाढ़े समय में लोक-मानस का नेतृत्व किया और अपनी प्रखर वाणी और तर्कों से बाह्याडम्बरों एवं ढकोसलों का खण्डन किया। ऐसी महान् विभूति के जीवन एवं साहित्य को समझने व अध्ययन करने के लिए युगीन परिस्थितियों को जानना अति आवश्यक है। फिर कोई भी ईमानदार कलाकार युगीन परिस्थितियों से अपने को बरी नहीं कर पाता। इसलिए किसी साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिए उसके युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाए।

कबीरदास के युग के निश्चय के पश्चात् हम यहाँ कबीर-युग की परिस्थितियों का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक करेंगे ताकि उनके युग की उन परिस्थितियों को भली-भाँति समझ सकें जिन्होंने कबीर के व्यक्तित्व को प्रभावित किया था। कबीर के समय के परिवेश अथवा परिस्थितियों की मीमांसा हम निम्नलिखित विंदुओं के आधार पर कर सकते हैं–

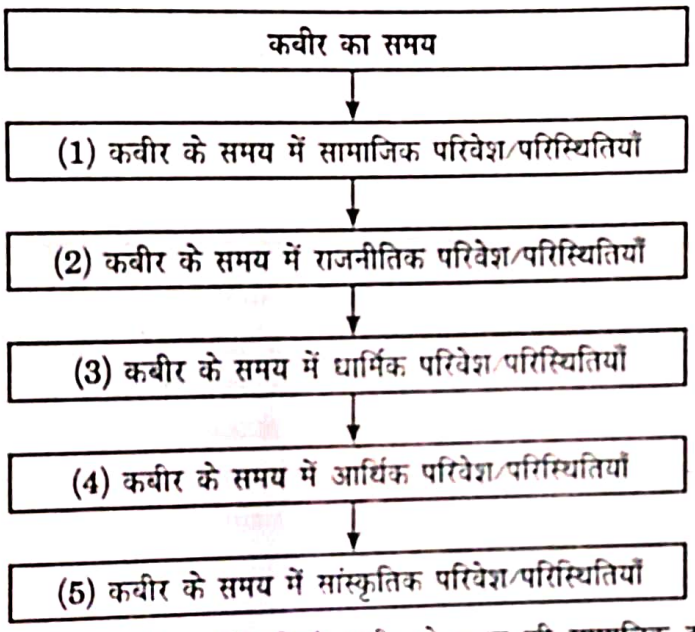


**1. कबीर के समय में सामाजिक परिवेश/परिस्थितियाँ**–कबीर के समय की सामाजिक दशा अच्छी नहीं थी। किसी भी देश, समाज या जाति की हार का मुँह देखने के पश्चात् सामाजिक स्थिति भला कैसे ठीक रह सकती है। विजित हिन्दू जाति घोर मानसिक हीनता-ग्रंथि से ग्रसित थी। इस पर निराशा की घटा छाई हुई थी। यवनों के अत्याचारों से हिन्दुओं का सामान्य जन-जीवन भी पिसता जा रहा था। हिन्दू व मुसलमानों में धार्मिक एवं व्यावहारिक आडम्बर भी अपनी चरम सीमा को छू रहे थे। दोनों धर्मों के लोगों में असत्य एवं मिथ्या का बोलबाला था। इसके फलस्वरूप देश में सर्वत्र अव्यवस्था एवं विशृंखलता का बोलबाला था। हिन्दू समाज की दशा तो अत्यन्त शोचनीय थी। वर्ण व्यवस्था और आश्रम धर्म के आधार पर संगठित ब्राह्मण समाज-व्यवस्था का ढाँचा पूर्णतः लड़खड़ा गया था। तत्कालीन समाज में जातिगत भेदभाव व छुआ-छूत की भावना व्याप्त थी। शूद्रों को अछूत माना जाता था। उनकी छाया के स्पर्श को भी बुरा माना जाता था। उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता था और उनकी ओर से जरा-सी भी कोई गलती होने पर उच्च वर्ग के लोग उन्हें दण्डित करते थे। इसलिए कदम-कदम पर उन्हें अपमानित किया जाता था। खान-पान, उठ-बैठ, हुक्का-पानी आदि के नियमों का दृढ़ता से पालन किया जाता था। हिन्दू धर्म में ही ऐसी कट्टरता नहीं अपितु मुस्लिम धर्म में भी मजहबी जोश और कट्टर भावना चरम सीमा पर थी। हिन्दू कट्टरता से पीड़ित व उपेक्षित निम्न वर्ग इस्लाम में सम्मिलित होने लगा था। भय और प्रलोभन दोनों के कारण सामूहिक धर्म परिवर्तन हो रहा था। इसके अतिरिक्त धर्म में वर्णव्यवस्था के नियम शिथिल पड़ जाने के कारण जातियों और उपजातियों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। इसी प्रकार मुस्लिम धर्म में भी विभिन्न समूह एवं जातियाँ बढ़ रही थीं। सैयदों, पठानों आदि में भी भेद-भाव की भावना घर कर चुकी थी।

धर्म के नाम पर दिखावा अथवा आडम्बर हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के लोगों में खूब फैल गया था। मुस्लिम बने हिन्दुओं की दशा तो और भी विचित्र थी क्योंकि वे मुस्लिम धर्म को अपनाकर भी अपने हिन्दू रीति-रिवाजों व संस्कारों को पूर्णतः त्याग नहीं सके और न ही मुस्लिम संस्कृति को पूर्ण रूप से अपना सके थे। कबीरदास ने अपने युग की पतित जाति-व्यवस्था व छुआ-छूत की भावना को देखकर ही इस भाव का खण्डन यह कहकर किया था :–

**जाति-पाँति पूछे नहि कोय, हरि को भजे सो हरि को होय।**

कबीर युगीन समाज में नारियों की दशा तो और भी दयनीय थी। सामन्त समाज में तो उन्हें विलासिता का साधन मात्र ही समझा जाता था। पंडितों के लिए संस्कारहीन होने के कारण शूद्रवत थीं। संतों के लिए साक्षात् मायामूर्ति थी। संत लोग सती की प्रशंसा करते थे तथा दरबारी कवि उसके रानी रूप पर मोहित थे। समाज में पर्दा-प्रथा प्रचलन के कारण नारी जीवन नारकीय बना हुआ था। सुन्दर किशोरियों व युवतियों को सामन्त व शासक वर्ग के लोग बलात् उठाकर उनसे विवाह कर अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाते थे। फलस्वरूप हिन्दू समाज में अल्पायु में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। नारी के प्रति अत्याचार का ही यह एक रूप था। कच्ची उम्र में ही उसे गृहस्थ का बोझ उठाना पड़ता था। नारी जीवन घर की चारदीवारी तक ही सीमित हो गया था। समाज ने नारी के उत्थान के सभी द्वार मानो बंद कर दिये थे। अत्याचारी मुस्लिम शासकों के कारण ही हिन्दू समाज में बाल विवाह, पर्दा-प्रथा, बहु-विवाह जैसी असामाजिक एवं दूषित परम्पराओं का उदय हुआ। उस समय सती-प्रथा भी पूरे जोरों पर थी।

कबीर के युग में समाज उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग आदि तीन वर्गों में विभाजित था। उच्च वर्ग निम्न वर्ग को हीन भावना से देखता था और व्यवहार भी उसी दृष्टिकोण से करता था। परिणामस्वरूप समाज की एकता टूटती जा रही थी। दूसरी ओर मुस्लिम वर्ग शासक होने के कारण अहंकारी बन गया था। वह अपनी शक्ति के घमंड में चूर दूसरे धर्मों के लोगों की भावनाओं को चूर करने में जरा भी नहीं हिचकता था। उसने हिन्दुओं के पूजा स्थलों पर आक्रमण करके तथा उन्हें तोड़-फोड कर उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाई थी।

**2. कबीर के समय में राजनीतिक परिवेश/परिस्थितियाँ**–भारतवर्ष में चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में तुगलक बादशाहों का प्रभुत्व था। इससे पूर्व गुलाम वंश की दासता से देश पिस चुका था। मोहम्मद तुगलक का समय भारत की प्रजा के लिए महान् संकटों का था। विश्व-विजय की इच्छा, राजधानी परिवर्तन, ताम्र-मुद्रा-प्रचलन और नृशंस हिन्दू जन-हत्याओं के द्वारा प्रजा पर असंख्य कष्ट के पहाड़ गिराए जा रहे थे। देश में बढ़ते हुए अकाल, महामारी, नृशंस नरसंहार आदि के द्वारा चारों ओर दुःख व पीड़ा का डंका बज रहा था। तुगलक वंश का फिरोजशाह तुगलक तो तंगदिली के लिए प्रसिद्ध था। वह अपनी कट्टरता और निर्ममता के लिए कुख्यात था। ब्राह्मण वर्ग के तो वह हाथ धोकर पीछे पड़ा रहता है। थोड़ी-सी बात पर जिंदा जलवा देना उसके लिए मामूली-सी बात थी। उसकी क्रूरता के कारण अनेक हिन्दुओं को जीवन से हाथ धोने पड़े थे। इसके पश्चात् दूसरे सुल्तान शासन पर बैठे तो वे भी काफी क्रूर एवं अन्यायी थे। वे अपनी विलासिता के लिए प्रसिद्ध थे। ऐसी परिस्थितियों में जब पूरा भारतवर्ष निराशा के अन्धकार में डूब चुका था, तैमूर के बर्बर आक्रमण हुए। तैमूर के इन युद्धों ने हिन्दुओं की बची हुई प्रतिष्ठा को भी मिट्टी में मिला दिया। नर-हत्याओं और लूटपात का ऐसा नग्न नृत्य हुआ कि मानवता भी उसे देखकर रो पड़ी। बूढ़े, बच्चे, जवान, स्त्रियाँ सबके सब तैमूर के संगीनों के लक्ष्य बने। देश में सर्वत्र अशांति, निर्धनता और निराशा के बादल छाए हुए थे। तैमूर ने तो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है, **"भारत पर आक्रमण करने का मेरा मुख्य लक्ष्य काफिरों को दण्ड देना, बहुदेववाद और मूर्ति पूजा का विनाश करके गाजी और मुवाहिद बनाना है।"** [एलियस एण्ड डाल्सन : पृष्ठ-317]।

अतः स्पष्ट है कि तैमूर के इस आक्रमण को भारत कभी नहीं भूलेगा। दिल्ली में लूटमार करने के पश्चात् लौटता हुआ उजड़े हुए गाँवों व कस्बों को फूँकता हुआ गया। अनेक सुन्दर स्त्रियों व बच्चों को गुलाम बनाकर अपने साथ ले गया। उसके आक्रमण के पश्चात् देश में अराजकता फैल गई जो लगभग पन्द्रह वर्षों तक बनी रही।

सन् 1416 में पंजाब के शासक खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया और इस प्रकार दिल्ली में सैयद वंश के शासन की नींव डाली। सैयद वंश ने दिल्ली पर लगभग पैंतीस वर्ष तक राज्य किया। इस अवधि में सैयद वंश के चार शासक हुए किन्तु कोई विशेष उन्नति नहीं कर सके। इन शासकों की कमजोरी का लाभ उठाकर लाहौर के शासक बहलोल लोदी ने सैयद वंश के शासन को उखाड़ कर लोदी वंश की नींव डाली। बहलोल एक महत्त्वाकांक्षी एवं वीर पुरुष था किन्तु अधिक देर तक शासन न कर सका। किन्तु उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी ने अपने शासनकाल में कई भीषण युद्ध करके नागौर, मालवा, धोलपुर आदि कई राज्यों को अपने अधीन कर लिया। सिकन्दर लोदी का धार्मिक दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण था। वह इस्लाम का कट्टर समर्थक था। उसने अपने शासनकाल में हिन्दू धर्म को मानने वाले लोगों पर अनेक अत्याचार किये। यहाँ तक कि उसने

कबीरदास जैसे संत को भी क्षमा नहीं किया। इब्राहिम लोदी इस वंश का अन्तिम शासक था जिसे बाबर ने पानीपत के मैदान में हराकर लोदी वंश के शासन को नष्ट करके मुगल वंश की नींव डाली। किन्तु इससे लगभग आठ वर्ष पूर्व सन् 1518 में कबीरदास का निधन हो चुका था।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीरदास के युग में भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ स्थिर नहीं थीं। उस समय केन्द्रीय शक्ति का पूर्णतः अभाव था। कोई शक्तिशाली शासन नहीं था जो पूरे देश को अपने शासन के अधीन संगठित कर सकता। यही कारण है कि यह राजनीति का उथल-पुथल का समय था।

**3. कबीर के समय में धार्मिक परिवेश/परिस्थितियाँ**–जब सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ ठीक न हों तो धार्मिक परिस्थितियों के ठीक होने में भी सन्देह रहता है। कबीर युग का सम्पूर्ण समाज धर्म के नाम पर विविध समुदायों में विभाजित था। बौद्ध धर्म भी हीनयान व महायान शाखाओं में बँट गया था। हीनयान में सैद्धांतिक पक्ष की दार्शनिक जटिलता होने के कारण लोगों की उसमें कम आस्था रह गई थी। जबकि महायान में व्यावहारिक पक्ष की प्रमुखता थी। उसमें सभी लोगों को सम्मिलित होने की आज्ञा थी। महायान में उदारता होने के कारण विकृतियाँ भी आ गई थीं। महायान के 'शून्य' के आधार पर सहजयान की नींव डाली थी। लोक मर्यादा, पाखण्ड, बाह्याचार और पुस्तकीय ज्ञान के प्रति जो विद्रोह की भावना उठ रही थी, वह इन सहजयानियों की वाणी में साकार हो उठी। इन सहजयानियों की वाणी एक ऐसा आन्दोलन था जो धर्म के तथाकथित ठेकेदारों के निहित स्वार्थों के प्रति खुला विद्रोह था। तंत्रों और गुह्य साधनाओं और मतों को आश्रय मिला। फलस्वरूप आगे चलकर इनकी साधना में भी विकार उत्पन्न हो गए। इससे हिन्दू धर्म की एकता को आघात पहुँचा था। उस समय प्रचलित शंकराचार्य का मायावाद सहजवादियों के शून्यवाद के लिए चुनौती था।

सहजवादियों सिद्धों की भाँति ही नाथ सम्प्रदाय में भी विद्रोह की भावना थी। दमन मार्ग का त्याग, पुस्तकीय ज्ञान का विरोध, बाह्याचार का विरोध, तीर्थ-व्रतादि का खण्डन, गुरु महिमा को महत्त्व, लोकभाषा में प्रतीक-योजना आदि भी नाथों की वाणी की प्रमुख विशेषताएँ थीं। कबीर पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव साफ तौर पर दिखाई दे रहा है। उनकी वाणी में भी ये सब विशेषताएँ किसी-न-किसी रूप में देखी जा सकती हैं।

कबीर युग से पूर्व जैन धर्म का प्रचार-प्रसार हो चुका था। जैन मुनि आचार क्षेत्र में मंत्र, यंत्र, मुद्रा, कुण्डली, योग, मन्दिर, मूर्ति, चर्या, उत्सव आदि को तांत्रिकों की भाँति ही महत्त्व देते थे। कबीर की वाणी पर जैन मुनियों की अहिंसा और धार्मिक उदारता का प्रभाव पड़ा है।

शंकराचार्य के दार्शनिक मार्ग को वेदान्त और साधना के अंश को स्मार्ट कहा है। शंकराचार्य ने वेदशास्त्र, द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म के पालन द्वारा आत्मशुद्धि पर बल दिया था। कबीरदास इस वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध थे। उन्होंने इस पर जमकर प्रहार किये हैं। कुमारिल भट्ट ने यज्ञों के कर्मकाण्ड पर बल दिया। ये यज्ञ व कर्मकाण्ड अनुष्ठान अत्यन्त खर्चीले थे। कबीरदास ने इन्हें बाह्याडम्बर बताया और इनका खण्डन किया।

कबीर के युग में गोरखनाथ के नाथ पंथ का खूब प्रचार हो रहा था। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "गोरखनाथ ने शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर माया योग के साधनों को व्यवस्थित किया तथा शेष परम्परा के सामंजस्य से चक्रों की संख्या नियत की।"** नाथ मत के लोगों का विश्वास था कि शरीर और मन की शुद्धि तथा आत्मज्ञान के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है। अतः नाथ सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता समन्वयवादिता है। उनमें निर्गुण और हठयोग के तत्त्वों का मिश्रण है। इसमें जैन मत की अहिंसा, शैव धर्म की सदाचारिता, बौद्धों की कठोर आलोचना वृत्ति का मिलन था। नाथ पंथ के योगियों ने जातिगत भेद-भाव व धर्म के नाम पर किये गए आडम्बरों का भी खण्डन किया। कबीर वाणी में भी नाथ पंथ के ये प्रमुख तत्त्व स्पष्ट रूप में देखे जा सकते हैं।

इन सब मत-मतांतरों के अतिरिक्त सूफी संन्यासियों ने यहाँ इस्लामी वातावरण तैयार किया। कुछ सम्प्रदाय भी खड़े किये गए। इन्होंने भारतीय अद्वैतवाद को अपने ढंग से अपनाया। प्रेम स्वरूप निराकार ईश्वर का प्रचार किया। सूफी सन्तों ने नाथ सम्प्रदाय तथा एकेश्वरवादी विचारों को अपनाते हुए उनमें समन्वय करने में योगदान दिया। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम अजनबीपन को भी कम किया। इन सभी परिस्थितियों का कबीर के साहित्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए कबीरदास के काव्य में इन्द्रीय दमन, पुस्तकीय ज्ञान, धर्म के नाम पर किये गये दिखावे, सामाजिक भेदभाव, वामाचार आदि का खण्डन किया गया है।

**4. कबीर के समय में आर्थिक परिवेश/परिस्थितियाँ**–किसी समाज के विकास में उसकी आर्थिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। कबीर के गुण में राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ऐसे में आर्थिक स्थिति अच्छी

होने की कम संभावना होती है। तत्कालीन समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित था—उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। मध्य वर्ग अपने अस्तित्व में आ रहा था। अतः समाज इन दोनों वर्गों पर चल रहा था। उच्च वर्ग शासक व सामंत लोग थे और यह वर्ग निम्न वर्ग अर्थात् साधारण जनता के परिश्रम पर पलने वाला था। निम्न वर्ग दयनीय दशा में रहने के लिए विवश था। इस संदर्भ में **बारबोसा** नामक एक पुर्तगाली यात्री ने लिखा है—**"जहाँ उमरा और बादशाह महलों में निवास करते थे वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित भवनों में रहते थे तथा शेष जनता के भाग्य में झोंपड़ों में रहना था।"** इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में कुछ लोग ही सम्पन्न और समृद्ध थे तथा अधिकांश लोग गरीबी की हालत में रहने के लिए विवश थे। निम्न वर्ग करों की मार व लूट-पाट का शिकार बना रहता था। उसका विभिन्न प्रकार से शोषण किया जाता था।

उच्च वर्ग में सामन्त, जागीरदार, सुल्तान, उमरा, उच्च पदों पर नियुक्त अधिकारी व बड़े-बड़े व्यापारी सम्मिलित थे। इन सबका जीवन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। इन्हें राज्य की ओर से जागीरें, वेतन व अन्य सुविधाएँ मिलती थीं। दूसरी ओर नगर में रहने वाले साधारण लोग, गाँव में रहने वाले किसान, मजदूर, छोटे-छोटे कारीगर आदि निम्न वर्ग में आते थे। ये लोग अपनी मेहनत पर जीवित रहते थे। इन्हें शासन की ओर से कोई सहायता नहीं मिलती थी। किसान अनाज, फल, सब्जी आदि की फसलें उगाता था। उसे अपनी मेहनत से उगाए अनाज में से कर के रूप में एक निश्चित भाग शासक या राजा को देना पड़ता था। इसलिए उसे बचे हुए अनाज पर ही जीवित रहना पड़ता था। शोषणपूर्ण नीतियों के कारण किसान व मजदूर का जीवन दयनीय दशा तक पहुँचा हुआ था। करों से लदे होने के कारण साधारण जनता को सुख की साँस नहीं मिलती थी। इस वर्ग को शासक की ओर से कोई सहायता या सुविधा प्राप्त नहीं थी। निम्न वर्ग को उच्च वर्ग को खुश रखने के लिए उसकी बेगार भी करनी पड़ती थी। बेगार का प्रचलन ही शोषण का दूसरा रूप था।

**5. कबीर के समय में सांस्कृतिक परिवेश/परिस्थितियाँ**—भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही समन्वय की भावना से पलावित रही है। पुराणों में भी इस समन्वय की भावना को जागृत करने के प्रयास किये गए हैं। वहाँ पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड में दर्शन व भक्ति का समन्वय किया गया है। मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा, धर्म-शास्त्रों का सम्मान, कर्मफल में विश्वास, अवतारवाद, गौ व ब्राह्मण को सम्मान आदि पौराणिक धर्म व संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते ये सब विशेषताएँ सगुण-भक्ति में देखी जा सकती हैं। मध्यकालीन धर्म साधना में पूर्ववर्ती सभी धर्म साधनाएँ जिस किसी रूप में बनी रहीं। शैव, शाक्त, भागवत और गणपात्य जैसे प्रमुख धर्मों में ज्ञान, योग तंत्र और भक्ति की प्रवृत्तियों का समन्वय होने लगा। योग का प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया। ज्ञान, भक्ति, कर्म के साथ योग को भी जोड़ दिया गया। स्वयं कबीरदास ने ज्ञान के साथ भक्ति के महत्व को स्वीकार किया है। अतः स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में समन्वय की भावना निरन्तर बनी रही। इसी समन्वय की भावना को कबीर की वाणी में भी स्थान मिला है।

न केवल धर्म या भक्ति के क्षेत्र में अपितु वास्तुकला के क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति समन्वयात्मकता की भावना देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ ऐलोरा के समीप कैलास मन्दिर में शिव की मूर्ति के सिर पर बोधि-वृक्ष स्थित है। भारतीय वास्तुकला में समन्वय के ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। कबीर के युग में प्रचलित भक्ति भावना कदाचित् इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

कबीर युग में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ भी एक दूसरे के समीप आ चुकी थीं। संगीत, चित्र और भवन कला निर्माण में दोनों संस्कृतियों के उपकरणों में भी समन्वय हो गया था। इन दोनों संस्कृतियों ने एक स्तर पर एक दूसरे को प्रभावित किया है। कबीरदास ने अपने काव्य में जहाँ हिन्दू संस्कृति के गुणों का गान किया है वहाँ उसमें व्याप्त दोषों पर जमकर प्रहार भी किये हैं। इसी प्रकार कबीर के काव्य में मुस्लिम संस्कृति का आलोचनात्मक रूप दिखाई देता है। जहाँ कबीरदास मुस्लिम संस्कृति के गुणों का वर्णन करते हैं वहीं उसके दिखावटी रूप व उसमें व्याप्त वामाचार का खण्डन करते हैं।

अतः स्पष्ट है कि जब कबीर उत्पन्न हुए तब देश विषम परिस्थितियों से गुजर रहा था। युगीन परिस्थितियों के अध्ययन एवं मनन के द्वारा कबीर ने जो कुछ भी कहा है, उसमें तत्कालीन समस्त समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है। कबीर ने अपनी वाणी के द्वारा एक अभिनव समाज का निर्माण करने का सफल प्रयास किया था। वस्तुतः सामयिक परिस्थितियों ने ही कबीर के अदम्य साहसी व्यक्तित्व को गढ़ा था। कबीर का व्यक्तित्व विलक्षण व्यक्तित्व था।

◆◆◆

## कबीर का समाज दर्शन

**कबीरदास के कृतित्व के आधार पर उनका समाज-दर्शन स्पष्ट कीजिए।**

*अथवा*

**कबीरदास की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**"क्या कबीर के समाज-दर्शन के आधार पर उन्हें समाज-सुधारक कहना उचित है?" कथन की विवेचना कीजिए।**

**उत्तर–कबीर का समाज-दर्शन/सामाजिक चेतना**–कबीर के जीवन काल में भारतीय समाज में धर्म के नाम पर दिखावा व पाखण्ड ही शेष रह गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अंधविश्वासों और पाखण्डों के जाल में उलझे हुए थे। दोनों सम्प्रदायों के लोग अपने आपको श्रेष्ठ घोषित कर रहे थे। कबीरदास तत्कालीन समाज की पतित दशा का गहन अध्ययन किया तथा उसे स्थिति से उभारने के लिए धर्मोपदेश को माध्यम बनाया। उस समय धर्म ही चेतना का रूप और उचित माध्यम था। धर्म के अधिकार की मांग ही आर्थिक और सामाजिक मांग थी। वह मांग वास्तव में दिखावटी और ऊपर से लादी हुई मर्यादाओं को और परम्पराओं को उतार फैंकने की माँग थी। उस समय विशाल जन-समूह उसके अधिकारों से वंचित था। यही कारण है कि उस समय के सभी आन्दोलनों का माध्यम धर्म ही था। उस युग के सजग नेता धर्म के नाम पर मानव मुक्ति, समानता और एकता पर बल देते थे। कबीरदास ने भी ऐसा ही किया। कबीरदास ने तत्कालीन समाज की धड़कन को समझा और उसमें व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, साम्प्रदायिकता, कट्टरवादिता, बाह्य विधि-विधानों आडम्बरों आदि का खुलकर विरोध किया।

उन्होंने समाज में प्रचलित हर प्रकार की बुराई के खिलाफ ध्वज उठाया। कबीरदास जनता के हर प्रकार के शोषण को मिटा देना चाहते थे। अतः स्पष्ट है कि कबीर के काव्य पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि कबीर ने तत्कालीन मूल-भूत सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। इतना ही उनके समाधानों की ओर भी संकेत किये हैं।

निसंदेह कबीर संत एवं कवि होने के साथ-साथ जागरूक समाज सुधारक भी थे। उनका सामाजिक विद्रोह व आन्दोलन मूल्यहीन था। उनका सामाजिक चिन्तन उस दिशा की ओर अग्रसर था जिससे समाज के एकता का विकास हो। मूल्यहीन आन्दोलन या क्रांति उन्हें रुचिकर नहीं थी। उन्होंने अपने काव्य में समाज को जोड़ने वाले तत्त्वों को बल दिया है। उन्होंने सबका ईश्वर एक बताया है और सभी धर्मों के लोगों को उस एक परमात्मा की सन्तान कहा है। उन्होंने समाज के लोगों के लिए सदाचरण को अनिवार्य बताया है। कबीरदास के इस महान समाज-चिन्तन पर प्रकाश डालते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है, **"कबीर भक्त कवि, भक्त साधक, समाज सुधारक कवि, लोक नेता आदि सभी कुछ एक साथ हैं।"** कबीरदास के सामाजिक चिन्तन को उजागर करने हेतु निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत यहाँ अध्ययन प्रस्तुत करेंगे–

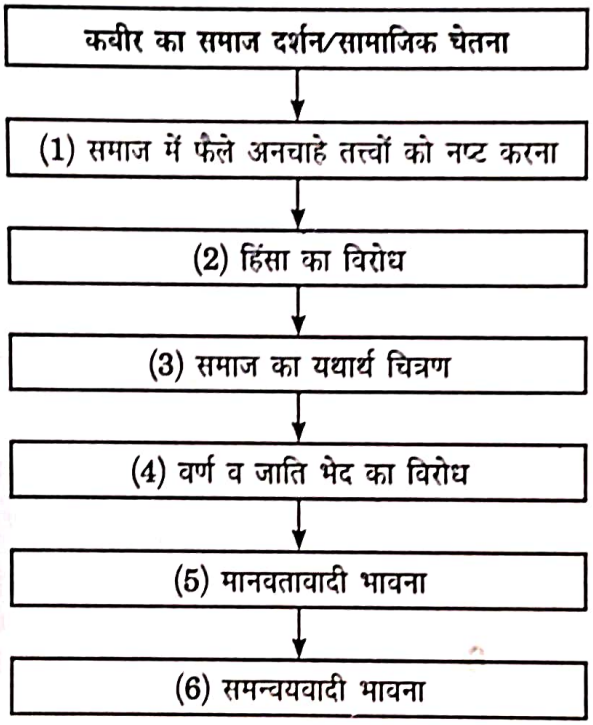


**1. समाज में फैले अनचाहे तत्त्वों को नष्ट करना**–कबीरदास सत्य को सबसे बड़ी शक्ति मानते थे। तत्कालीन समाज में फैले हुए अनचाहे तत्त्वों को नष्ट करने के लिए उनके पास सत्य की शक्ति थी, सदाचरण का साहस था, और थी व्यंग्य-युक्त वाणी की तेग। उनकी इन शक्तियों के सामने कोई नहीं टिक सकता था। कबीरदास ने लोगों में इन्हीं शक्तियों को जागरूक किया। जिससे वे अनचाहे सामाजिक तत्त्वों को नष्ट कर सकें। उन्होंने जन-जन संचेत कर उनके दोषों को दूर किया तथा समाज को मंगलकारी मार्ग की ओर अग्रसर किया। रोती-विलखती मानवता को उन्होंने न केवल सांत्वना ही नहीं दी। अपितु जो वह मार्ग भूल चुकी थी, उसे पुनः प्रशस्त किया। डॉ. विजेन्द्र स्नातक ने ठीक ही कहा है, **"कबीर सहज में आस्था रखने वाले मानवतावादी व्यक्ति थे। इस्लाम को स्वीकार करने पर भी वे कट्टरता से कोसों दूर थे। उनका लगाव किसी रूढ़ि व अन्ध मर्यादा से नहीं था। हृदय की स्वच्छ कसौटी और विवेक की जो खरी लीक बनती, उसे ही कबीर साहब मानते थे। अनुभव की तुला पर तनय और सत्य की परख कर ग्रहण व त्याग की पद्धति ही उनका जीवनक्रम बन गया था। उन्होंने अपने इन्हीं सिद्धान्तों को व्यावहारिक जामा पहनाकर समाज में व्याप्त अनचाहे तत्त्वों को नष्ट किया।"**

**2. हिंसा का विरोध**–कबीरदास समाज की हर प्रकार की बुराई के प्रति अपना विरोध प्रकट करते थे। कबीर के युग में शाक्तों व मुसलमानों में बलि देने व हलाल करने की परम्परा प्रचलित थी। कबीरदास की दृष्टि में यह घोर हिंसा थी। उसे धर्म की आड़ में सुरक्षित रखा जा रहा था। कबीर की दृष्टि से ऐसा निंदनीय कर्म कैसे बच सकता था। उन्होंने इसे शोषण व अत्याचार बताकर इसका विरोध किया। उन्होंने मूक पशुओं के प्रति अपनी करुणा को प्रकट करते हुए इस हिंसात्मक परम्परा व प्रवृत्ति का जोरदार शब्दों में खण्डन किया।

उन्होंने धर्म के नाम पर हिंसा करने वाले व मांस भक्षण करने वाले हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों को आड़े हाथों लिया–

**बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।**
**जो नर बकरी खात हैं, ताको कौन हवाल।।**

इसी प्रकार शाक्तों की हिंसात्मक प्रवृत्ति को देखकर उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि शाक्त ब्राह्मण से मिलने की अपेक्षा वैष्णव चंडाल से मिलना कहीं उत्तम है–

**"साकत बांमण मति मिलै, बसनौ मिलै चंडाल।"**

कबीरदास ने ऐसा समाज के मंगल के लिए ही किया है। ऐसी मिथ्यावादी व आडम्बरपूर्ण रूढ़ियों से समाज का कभी भला नहीं हो सकता। इसलिए कबीरदास ने समाज में व्याप्त हिंसात्मक प्रवृत्ति का खण्डन किया और उसे करने वालों को कड़े शब्दों में फटकारा। **डॉ. पारसनाथ तिवारी** ने कबीर की इस क्रांतिकारी सामाजिक विचारधारा का उल्लेख करते हुए लिखा है–**"कबीर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों, रुढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रवाहित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया।"**

**3. समाज का यथार्थ चित्रण**–कबीरदास संत व कवि होने के साथ-साथ महान समाज-सुधारक भी थे। वे हर बात पर गहराई से चिन्तन करने के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचते थे। उन्होंने अपने युग के समाज में आई बुराइयों को दूर करने के लिए पहले समाज का गहन अध्ययन किया और उसकी यथार्थ तस्वीर खींची जिससे किसान व अन्य जन-साधारण की दयनीय दशा का बोध होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कबीर ने समाज की वस्तुस्थिति का चित्रण करके उसमें व्याप्त विभिन्न समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है ताकि उनका समाधान किया जा सके। इस दृष्टि से कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं–

**"नगर एक तहाँ जीव धरम हता वसै जु पंच किसान।**
**नैनू निकट श्रवनूं रसनूं, इन्द्री कह्या न मानै हो राम।**
**गांइ कु ठाकुर खेल कु नेपै, काइथ खरच न पारै।**
**जोरि-जेवरि खेत पसारै, सब मिलि मोकौ मारै हो राम।**
**खोटौ महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै।**
**बुरो दीवान दादि नहीं लागै, इक बांधे इक मारै हो राम।**
**धरम राइ जब लखा मांग्या, बाकी निकसी भारी**
**पांच किसानां भाजि गए हैं, जीवधर बाध्यौ पारी हो राम।।"**

कबीर की इन पंक्तियों से उस समय के किसान की दयनीय दशा का बोध होता है। उस समय गाँव के मुखिया को 'ठाकुर' कहा जाता था। वह किसानों के खेत नापने का काम करता था। उसकी आज्ञा के बिना खेत बढ़ाने वाले किसान को वह दंडित करता था। गाँव के हाकिमों को दीवान, महत्तो कहा जाता था। किसानों से निर्दयतापूर्ण लगान वसूल किया जाता था।

कबीरदास की सूक्ष्म दृष्टि से समाज का कोई भी अंग बच नहीं सका था। उन्होंने अपने युग के व्यापारियों के व्यवहार का भी यथार्थ चित्रण किया है कि वे किस प्रकार मूल पर ब्याज की राशि बढ़ाते रहते थे–

**"मोहिं ऐसे बनिज सौं कबनु काज। जिहि घट मूल नित बढ़ै ब्याजु।**
**नाकु एक बनिजारै पाँचु। बरध पचीस के संगु काँचु।**
**नउ बहियाँ दस मौंनि आहि। कसनि कहर्त्तार लागि ताहि।**
**सात सूत मिलि बनिज कीन। चलौ बनिजारा हाथ झारि।**
**बनिज खुंटानि पूँजी टूटि। दह दिसी टांडौ गयौ फूटि।**
**कहै कबीर यहु जनमि बांदि। सहज समानौ रहि लादि।।"**

अतः स्पष्ट है कि कबीरदास ने अपने युग के समाज का यथार्थ चित्रण करके उसमें फैली बुराइयों, अन्याय व अत्याचारों, शोषण आदि की ओर ध्यान आकृष्ट किया ताकि उन्हें दूर करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सके।

**4. वर्ण व जाति भेद का विरोध**–कबीरदास वर्ण व जातिभेद को नहीं मानते थे। उस युग में ब्राह्मण जन्म के आधार पर ही श्रेष्ठ समझे जाते थे, उनका आचरण चाहे कितना भी नीच क्यों न हो? मानव-मानव के बीच भेद पैदा करने वाले वाह्याडम्बरों, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के प्रति कबीर ने सदैव कठोर रुख अपनाया, जैसा कि अन्य किसी साधु-संत या भक्त के बलबूते का न था। कबीर का मत है कि मानव-मात्र की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है। एक ही ईश्वर सबमें व्याप्त है। एक बिन्दु से निर्मित पंचतत्त्व-युक्त मानव-शरीर का निर्माता भी एक ही ब्रह्म रूपी कुम्भकार है, तो फिर जन्म के आधार यह भेद-भाव क्यों है? यही कारण है कि कबीरदास ने जातिगत भेद-भाव का खण्डन किया है–

**जो तू बाँमन बाँमनी जाया।**
**आन बाट हूवै काहे न आया।।**
**× × × × ×**
**जो तू तुरक तुरकानी जाया।**
**भीतर खतना क्यों न कराया।।**

ब्राह्मणों के छुआछूत आदि अमानवीय नियमों को उखाड़ फेंकने में कबीर साहब ने कोई कसर न छोड़ी थी। वर्णाश्रम धर्म के नाम पर उस हिन्दू समाज में छुआछूत के साथ जातियो की अस्पृश्यता का भी प्रचार हो गया था। कबीर ने देखा कि यह समाज के लिए अभिशाप है। इसलिए इसका खण्डन किया। कबीर ने उस मानव वर्ग का महान कल्याण किया जो पंडितों के प्रपंच का शिकार हो रहा था।

कबीरदास ने खुले शब्दों में हिन्दुओं के धार्मिक ठेकेदारों को ललकारते हुए कहा है–

**"काहे कों कीजै पांडे छोति विचारा।**
**छोतिहि ते उपजा संसारा।।**
**हमारै कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध।**
**तुम कैसे बाह्मण पांडे, हम कैसे सूद।**
**छोति छोति करत तुम्हरी जाये।**
**तो ग्रामवास काहे कौ आये।।"**

**5. मानवतावादी भावना**–कबीर के युग में कुछ ही लोग सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे साधारण जनता की मेहनत का फल भोग रहे थे और जनता, मजदूर, सेवक व किसान आदि का जीवन अत्यन्त दयनीय था। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। कबीरदास ने इस व्यवहार को अत्यन्त निकटता से देखा एवं अनुभव किया। इसलिए उन्होंने मानव के द्वारा मानव के प्रति किए गए इस अमानवीय व्यवहार का कड़ा विरोध किया। वे मानव-मानव में कोई अन्तर नहीं समझते थे। इसलिए वे अपेक्षा करते थे कि हर धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म के लोगों से सम्मान एवं समानता का व्यवहार करे। कबीरदास ने सभी मानवों को ईश्वर की संतान समझकर उनके प्रति मानवोचित व्यवहार करने का उपदेश दिया। उसकी दृष्टि में आदर्श मानव वही है जो सबमें ईश्वर को माने और सब को समान भाव से देखे।

कबीरदास की मानवतावादी भावना अत्यन्त विशद् एवं उदार है। वे सभी धर्मों को समान मानते हैं। वे हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदाय के लोगों में एकता स्थापित करना चाहते थे और दोनों के मतभेद समाप्त करने हेतु ही दोनों की तुलना भी करते हैं। दोनों में समानता दिखाने का प्रयास करते हैं। उनकी दृष्टि में राम और रहीम एक ही हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर और अल्लाह में भी कोई भेद नहीं है। उनका कथन है–

**"हमारै राम रहीम करीमां कैसौ अहल राम सति सोई।**
**इनकै काजी मुला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाला।।**
**इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारिस गंग दिवाजा।**
**तुरक मसीति दुरहै हिन्दू, दहूठा राम खुदाई।**
**जयां मसीति देहुरा नाहिं, तहाँ काकी ठुकराई।**
**हिन्दू तुरक दोऊ रह तुटी, फूटी अस कमराई।।"**

कबीरदास की मानवतावादी भावना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे मानव को मानव समझते हैं, मानव मानव में कोई भेदभाव नहीं करते, क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी मानव एक ज्योति से उत्पन्न हुए हैं। फिर उनमें यह भेद-भाव क्यों?

**"एक बूँद एक मूल मूतर एक चाम एक गूदा।**
**एक जोति थै सब उतपना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।"**

**6. समन्वयवादी भावना**–ऊपरी तौर पर देखने से कबीर के काव्य में खण्डनात्मक भावना ही दिखाई देती है किन्तु ज्यों-ज्यों हम उनके काव्य को गहराई से देखते हैं तो उनके काव्य में समन्वय की भावना के साक्षात् दर्शन होने लगते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने **कबीरदास** की समन्वयवादी भावना को उनके विचित्र व्यक्तित्व में देखा व अनुभव किया। उनका कथन है–**"वे मुसलमान नहीं थे। हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी साधु नहीं थे। वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान के नरसिंहावतार की मानव मूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे, जहां से एक ओर ज्ञान निकल जाता तो, दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहां से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है और दूसरी ओर सगुण साधना। वे उसी प्रशस्त चौरास्ते पर खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।"**

इस कथन से स्पष्ट है कि कबीर का आविर्भाव उस युंग में हुआ था जब विविध धर्मों व विचारधाराओं का बोलवाला था। एक ओर हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति को श्रेष्ठ बता रहे थे तो दूसरी ओर मुसलमान घोषणा कर रहे थे कि हमारा 'मजहब' ही सच्चा है। ऐसे विकट समय में कबीरदास समाज में एकता की भावना को लेकर आए तथा समाज को सही मार्ग दिखाने का प्रयास किया। कबीर ने किसी दर्शन को नहीं पढ़ा था अपितु वे परिस्थितियों का गहन अध्ययन करते और उस पर आत्मचिन्तन करके निकाले गए निष्कर्ष को अपनी वाणी के माध्यम से जनता तक पहुँचाते थे। इन्हीं आत्मानुभूत और 'आखिन देखे' को आधार बनाकर वे कहते थे–

**"जो अमासो आजवै, कल्या सो कुमिलाई।**
**जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाई।।"**

कबीरदास ने जटिल-से-जटिल दार्शनिक विचारों को जनभाषा में अभिव्यक्त किया। उन्होंने योग व हठयोग की क्रियाओं को भी सरल भाषा के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया। कबीर ने जिस भक्ति-भावना का प्रचार-प्रसार किया वह भले ही किसी एक वर्ग से संबंधित हो किन्तु सबके लिए ग्राह्य थी। कबीर की भक्ति-भावना सभी धर्मों की अच्छी भावना के तत्त्वों को लेकर आगे बढ़ती है। इसलिए वह किसी एक धर्म की नहीं, अपितु सभी धर्मों की है। कबीर की भक्ति भावना समाज सापेक्ष होकर चलती है। इसी प्रकार कबीर के ईश्वर संबंधी विचार भी निर्गुण व सगुण के पक्ष में नहीं हैं अपितु इनका ईश्वर या परमतत्त्व तो इन दोनों से परे है। वे ईश्वर के रूप आकार के पचड़े में नहीं पड़ते। उन्होंने स्पष्ट कहा है–

**"हरि जैसा है तैसा रहे, तू हरषि हरषि गुण गाय।"**

कबीर के समन्वयवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए **आचार्य परशुराम चतुर्वेदी** जी ने कहा है, **"कबीर साहब के समन्वयवाद की आधारशिला परमतत्त्व के केवल नित्य तथा एकरस होने, उस पर आश्रित बहु-रूपिणी सृष्टि के अस्थिर होने और उसके विविध अंगों के उनके मौलिक एकता के कारण एक समान सिद्ध होकर स्थित है।"**

कबीरदास के समन्वयवादी होने का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि वे राम-रहीम, अल्लाह-ईश्वर आदि में भेद न मानकर दोनों को एक मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि हमें ईश्वर व अल्लाह के नामों में न उलझकर उस परमतत्त्व को स्वीकार करना चाहिए जो हर प्राणी व कण-कण में व्याप्त है। उस परमतत्त्व के अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं है। कबीरदास का कथन है–

**जोगी गोरख गोरख करै,**
**हिन्दू राम राम उच्चरै।**
**मुसलमान कहै एक खुदाई,**
**कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्यौ समाई।।**

कबीर की वाणी में अधिकांश तत्त्व धर्मनिरपेक्ष हैं, जिन्हें सभी धर्मों के लोग निःसंकोच होकर अपना सकते हैं। उनका परम तत्त्व किसी विशेष स्थल पर ही उपलब्ध नहीं अपितु वह कण-कण में समाया हुआ है। इसलिए उसे कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म से संबंधित क्यों न हो समान रूप से प्राप्त कर सकता है। इससे बढ़कर समाज में एकता और क्या हो सकती है।

**डॉ. रामकुमार वर्मा** ने कबीर वाणी की इसी शक्ति एवं समन्वय की ओर संकेत करते हुए कहा है–**"हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की साम्प्रदायिकता की सीमा तोड़कर उन्हें एक ही भाव धारा में बहा ले जाने का अपूर्व कबीर के काव्य में था।..... उनकी सृष्टि ने ही उन्हें सार्वजनिक व सार्वभौमिक बना दिया।"**

कबीर की समन्वयवादी भावना कोई समझौता या शर्त नहीं है तथा न ही अच्छाइयों पर आधारित एक वाद विशेष अपितु वह तो एक प्रकार का सुझाव है जिसे कबीर साहब ने जनता के सामने रखा है। इसे स्वयं भी उन्होंने अपनी करनी बनाया है। कोई भी इस पर अपनी इच्छानुसार विचार कर सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर ने युगीन समाज को अत्यन्त निकट से देखा-परखा और उसके संबंध में अपनी निरपेक्ष विचारधारा बनाई। इसी सामाजिक विचारधारा के प्रकाश में उन्होंने समाज में व्याप्त विभिन्न रूढ़ियों, कुरीतियों, अन्याय व अत्याचार को समाप्त करने का आह्वान किया ताकि एक स्वस्थ एवं विकासशील समाज का निर्माण किया जा सके। उस समाज के निर्माण हेतु प्रेम, सद्भाव, न्याय, समानता, मानवता, धर्मशीलता आदि तत्त्वों का होना अनिवार्य बताया है। कवीरदास का यह कथन–**'साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय'**। उनके समाज संबंधी दर्शन, चिन्तन अथवा विचारधारा को स्पष्ट रूप में व्यक्त करता है। वे अपने इस कथन के माध्यम से मानव-समाज में समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित करना चाहते हैं। कबीरदास ने अपनी मार्मिक वाणी के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों की धज्जियाँ उड़ाईं तथा सरल, सात्विक सत्याचरण जीवन जीने की प्रेरणा दी। अतः कबीर को समाज-सुधारक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

◆◆◆

## कबीर का दार्शनिक चिन्तन

**कबीर के दार्शनिक चिंतन को स्पष्ट कीजिए।**

*अथवा*

**कबीरदास की दार्शनिक चेतना पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**कबीरदास की दार्शनिक विचारधारा की विवेचना कीजिए।**

**उत्तर–कबीर का दार्शनिक चिंतन**–दर्शन का अर्थ है–सम्यक् रूप से विचारशील दृष्टिकोण द्वारा देखना। संसार में जितने भी महापुरुष, विद्वान, संत, महात्मा, कवि इत्यादि हुए हैं, उन्होंने संसार के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों को अपने-अपने विवेकशील दृष्टिकोण से देख-परखा जाना तथा विवेचित किया है। विभिन्न महापुरुषों का यही दृष्टिकोण उनका दार्शनिक चिंतन कहलाता है। कबीरदास जी ने भी जीवन और जगत के विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन प्रस्तुत किया है, जो उनका दार्शनिक चिंतन कहलाता है। कबीर का लक्ष्य जिस प्रकार किसी काव्य की रचना करना नहीं था, ठीक उसी प्रकार किसी दर्शन की व्याख्या करना भी नहीं था। वे मूलतः संत थे। उनकी भक्ति में प्रेम की विविध भाव-व्यंजनाओं में ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि से संबंधित विचार भी सामने आए हैं। इन विचार बिंदुओं के आधार पर ही कबीर के दर्शन संबंधी विचारों पर विचार किया जा सकता है।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि काव्य और दर्शन दोनों अलग-अलग क्षेत्र हैं। किंतु ऐसा भी देखा जाता है कि कवि भी दार्शनिक होता है। कवि उस रूप में नहीं जिस रूप में दर्शन का विद्वान। इस संदर्भ में **महादेवी वर्मा** का यह कथन अवलोकनीय है–

**"काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क प्रणाली है और न सूक्ष्म बिंदु तक पहुँचाने वाली विशेष विचार पद्धति। वह तो जीवन को, चेतनानुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति आस्था का दूसरा नाम है।"** कवीरदास का दर्शन कोरा दर्शन नहीं था। **डॉ. त्रिलोकी नाथ दीक्षित** का कथन है, **"उनके काव्य में बुद्धि तत्व की प्रधानता है किंतु वह शुष्क नहीं है। आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत आदि का विवेचन नीरस विषय हैं। किंतु कबीर ने इनके समाधान के लिए सरल भाषा, भावमयी अनुभूतियों, कल्पना आदि का सहारा लिया है।"**

कबीरदास के काव्य में जिन दर्शन तत्वों का आगमन हुआ है, ऐसा नहीं है कि कबीरदास को उनका ज्ञान नहीं था, यदि ज्ञान न होता तो वह उनका विवेचन कैसे करता। इस संबंध में डॉ. पारसनाथ तिवारी का यह कथन देखिए–"कबीरदास की वाणियों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उनमें तत्त्व चिंतन बड़ा ही गंभीर है और यद्यपि कबीर ने पुस्तक ज्ञान को खंडन किया है, किंतु ऐसा ज्ञात होता है कि तत्कालीन दार्शनिक प्रणालियों की उन्हें सूक्ष्म जानकारी थी। साथ ही स्वानुभूति की भी उनके पास कमी नहीं थी। जिसकी तत्त्वचिंतन में सबसे अधिक आवश्यकता है। कबीर ने स्वतः ही इस बात की चेतावनी दे दी है कि कोई उनके गीत को साधारण गीत न समझे, क्योंकि इसमें उन्होंने 'ब्रह्म विचार' और 'आत्म साधना सार' का अपना दर्शन प्रस्तुत किया है।"

कबीरदास के दार्शनिक चिंतन अथवा दार्शनिक चेतना का विवेचन हम निम्नलिखित विंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं–

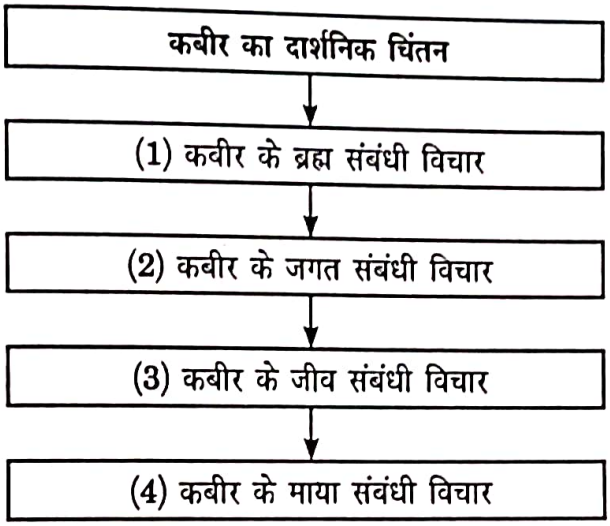


कबीर के जीवन दर्शन को समझने के लिए ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि तत्त्वों पर विचार करेंगे–

**1. कबीर के ब्रह्म संबंधी विचार**–कबीर की ब्रह्म संबंधी विचारधारा पर उपनिषदों का प्रभाव अधिक है। कबीर की ब्रह्म संबंधी भावना आदि से अंत तक अद्वैतपरक है। किंतु उस अद्वैत की प्राप्ति का आरंभ या प्रयास कबीर जब करते हैं अपने प्रिय परमात्मा से विमुक्त हृदय की मनोभावनाओं की जिस समय अभिव्यक्ति करते हैं, उस समय वे द्वैत भावना से प्रस्थान करते हैं। किंतु द्वैत भ्रमवश है। इसे ही वे अज्ञान समझते हैं। द्वैत की भावना से कबीर के अद्वैत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपने ब्रह्म का उल्लेख अद्वैतवादी भावना से प्रेरित होकर ही करते हैं। उनका कथन है–

**"कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन माहिं।**
**ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।"**

कबीरदास का विश्वास है कि ब्रह्म से ही समस्त सृष्टि का निर्माण होता है तथा उसके द्वारा उसका स्वरूप भी नष्ट हो जाता है।

**"पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया विलाय।**
**कबीर जो था सो भया, अब कुछ कही न जाए।।"**

कबीर के अनुसार ब्रह्म सृष्टि निर्माता होने के साथ-साथ पूर्ण निराकार, रूपविहीन, निर्लिप्त है, समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त होकर भी प्रत्येक घट में भी निवास करता है–

**"शरीर सरोवर भीतर, आछै कमल अनूप।**
**परम ज्योति, पुरुषोत्तम, जाखै रेख न रूप।।"**

यद्यपि कबीर वाणी में ब्रह्म के लिए अनेक नामों का प्रयोग मिलता है किंतु उनकी वाणी में 'राम' तथा 'हरि' शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वे विष्णु के अवतारवाद में विश्वास रखते थे। उनका राम न तो दशरथ सुत है, न ही वासुदेव का बेटा! सत्य तो यह है कि वह प्रभु का स्मरण करने हेतु इन नामों का सहारा लेते हैं। कुछ आलोचकों के अनुसार स्वामी रामानंद के प्रभाव के कारण ही कबीर ने बार-बार राम शब्द का प्रयोग किया है किंतु अन्यत्र वे निरंजन तथा अलखनामों से याद कर उठते हैं। परंतु हमें यह भी देखना होगा कि कबीर का ब्रह्म स्वरूपहीन है। लेकिन जो साधक उसे पहचान लेता है, वह पुनः ब्रह्म के समान हो जाता है।

कबीरदास ने जिस सत्ता की अनुभूति की है, वह निर्गुण और निराकार होते हुए भी इस सृष्टि का कर्त्ता और कारण दोनों ही है। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक भावना को निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है–

**लोगा भरमि न भूलहू भाई**
**खालिक खलक खलकु भहि खालिफ पूरे रह्यो सब ठाई।।**

× × × × × × × ×

**सब महि सच्चो एको सोई, तिनका किया किथं होई।।**

कबीर ने स्वीकार किया है कि उनका ब्रह्म निर्गुण, निराकार और अवर्चनीय सत्ता है, जो विश्व के कण-कण में व्याप्त है, उसे आत्मचिंतन के द्वारा सहज अनुभूति के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। कबीरदास ने इसे निरपेक्ष सत्य भी कहा है। ऐसे सत्य को अनुभव करना ही साधक का परम लक्ष्य बताया गया है। किंतु इस अनुभूत सत्य का प्रकट करना साधक के लिए कठिन कार्य है। कबीरदास–"ऐसा लौं, केहि विधि कहौ अनूठा लौ," कह कर चुप हो जाते हैं।

कबीरदास ने ब्रह्म के स्वरूप की अभिव्यक्ति और भाषा कठिनाई की ओर भी संकेत किया है–

**"जस कथिये तस होत नहीं है, जस है तैसा कोई।"**
**विनही ताला ताल बजावै बिन मंगल पर ताला।**
**बिनही सबद अनाहद बाजै, तहां मिरतत है गोपाला।**

वस्तुत कबीरदास के ब्रह्म की शक्ति का वर्णन करना संभव नहीं। वह तो अनुभव की वस्तु है–

**पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान**
**कहिबै कूँ शोभा नहीं देखा ही परमान।**

कबीर के काव्य में अभिव्यक्त अव्यक्त ब्रह्म का वर्णन आध्यात्मिक होते हुए भी आधिदैविक बन गया है। इसका कारण उनकी रहस्यवादी भक्ति भावना है। यही कारण है कि कबीर का आराध्य मात्र निर्गुण ब्रह्म है, जिसकी उन्हें न तो पूजा करनी पड़ती है और न ही उपासना। वे उस निर्गुण ब्रह्म को हृदय से ही प्रणाम कर भक्ति कर लेते हैं।

**2. कबीर के जगत सम्बन्धी विचार**–कबीरदास ने अद्वैतवादी विचारधारा के अनुकूल ही जगत् संबंधी विचार व्यक्त किये हैं। कबीरदास ने जगत् को असत्य कहा है। उन्होंने सर्वत्र जगत को क्षणभंगुर कहा है। कबीर ने संसार को सेमल के फूल, आकाश नीलिमा धुआं, धौर हर आदि के उपमानों से उपमित किया है–

**"दिन बहूँ-चहूँ के कारणै, जैसे सेंवल फूले।**
**झूठी सूँ प्रीति लगाइ, करि, साचै कूं भूले।।"**

× × × × × ×

**"यहुं ऐसा संसार है, ज्यों सेम्बर का फूल।**
**दिन दस के व्यवहार में झूठै रंगे न भूल।"**

मनुष्य के मन में सदा यह जिज्ञासा बनी रहती है कि संसार अपने अस्तित्व में कैसे आया होगा। इसी प्रकार कबीरदास सृष्टि को देख इसके रहस्य को जानना चाहते थे। एक स्थल पर कबीरदास ने अपनी इसी जिज्ञासा को प्रकट करते हुए लिखा है–

**"कहौ भाइया अम्बर कासूं लागा, कोई जानेगा जानन हरि सभागा।**
**अम्बर दीसै केता तारा। कौन चतुर ऐसा चितरन हारा।"**

कबीरदास ने जगत को नाना रूपात्मक कहा है, किंतु इसके अस्तित्व को वास्तविक न मानकर, उसके रचयिता या चित्रकार को ही सत्य माना है।

**"जिनि यहु चित्र बनाया, सो सांचा सुतधार।**
**कहै कबीर ते जन भले, चित्रवंतहि तेहिं विचार।।"**

कबीर ने जगत् की स्थिति को समझने के लिए पानी और बर्फ का उदाहरण दिया है–

**"पानी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाइ।**
**जो कुछ या सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ।।"**

डॉ. सरनाम सिंह ने कबीर के जगत संबंधी विचारों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

**"कबीर के अनुसार यह जगत नाम रूपात्मक है। देश और काल इसकी सीमाएं हैं। रूप का नाम रखा जाता है। जब तक रूप है। तभी तक नाम भी सार्थक है। इसलिए कबीर जी कहते हैं "रूप के विनष्ट होने पर क्या नाम रखोगे।"**

कबीर ने इस जगत को सर्वथा नाशवान समझा है। उसका नाश निश्चित है। इसकी उत्पत्ति और प्रलय में कुछ समय नहीं लगता। वह पूर्णतः अनिश्चित है–

**नर जाणे अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया।**
**मारग छांडि कुमारग जोवै, आपण मरै और कूं रोवै।**
**कछु एक किया कछु एक काणां, मुगध न चेतै निहवै मरणा।**
**ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न बारा।।**

कबीर के मतानुसार संपूर्ण सृष्टि उस ईश्वर की लीला है। उस परमात्मा ने कहने-सुनने के लिए इस संसार की रचना की है। वह स्वयं इसमें समाया हुआ रहता है, पर दिखाई नहीं देता। सत्त, रज तथा तम के योग से इसने संसार की रचना की है तथा अपने को इसमें छिपा रखा है। वह स्वयं तो आनन्द रूप है तथा यह संसार उस आनन्दरूप पल्लव रूपी गुणों का विस्तार हैं। पाँच तत्व उसकी शाखाएँ हैं। राम-नाम उसका सुंदर फल है। जो व्यक्ति संसार के इस रहस्य को जान लेता है।

**3. कबीर के जीव संबंधी विचार**–कबीरदास के मतानुसार जीव परमात्मा का अंश है। जिस प्रकार अद्वैतवादियों ने उपनिषदों को आधार बनाकर ब्रह्म एवं जीव की, आत्मा और परमात्मा की एकता स्थापित की है, वैसे ही कबीर ने भी परमात्मा और आत्मा अथवा ब्रह्म व जीव में अंश-अंशी का संबंध स्थापित किया है। वे कहते हैं कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई तत्त्व नहीं है। इसका अर्थ है कि आत्मा ही परमात्मा का ही रूप है। कबीर का कथन है कि हरि में पिंड और इस पिंड में हरि है। वह तत्त्व सब में समाया हुआ है। शरीर में स्थापित जीवात्मा के संबंध में कबीर ने कहा है कि न तो वह मनुष्य है, न देव, न योगी, न यती, न अवधूत, न माता, न पिता, न पुत्र, न राजा, न रंक, न ब्राह्मण, न बटई, न तपस्वी, न शेख–

**"न इहु मानस न इहु देउ ना इहु जती कहावै सेउ।**
**न इहु जोगी न अवधूता। ना इहु माइ न काहू पूता।।"**

कबीर ने जीवात्मा व परमात्मा के पृथक्त्व का कारण माया को बताया है। माया का आवरण हटते ही दोनों पुनः एक हो जाते हैं। यह उसी भाँति है जैसे तालाब में रखे कुंभ में भी तालाब का ही पानी है उसे अलग कुंभ की दीवार करती है। कुंभ के फूटते ही सारा पानी एक हो जाता है अर्थात् शरीर के नष्ट होते ही आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहता–

**"जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।**
**फूटा कुंभ जल जलहि समाना इहि तथ कथ्यौ ग्यानी।।"**

कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा के एकत्व के भी अनेक दृष्टांत प्रस्तुत किये हैं। जब आत्मा परमात्मा को खोजने निकलती है तो वह भी परमात्मा के रंग में रंग जाती है–

**"लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।**
**लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गई लाल।।"**

कबीरदास ने शरीर की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा है कि शरीर इस ब्रह्माण्ड का एक लघु रूप है या संस्करण–

**"ब्रह्मांडे सो प्यण्डे जानि।"**

कबीर ने शरीर को नश्वर कहा है और जीवात्मा को परमात्मा का अंश। जीवात्मा में वही गुण हैं जो परमात्मा में क्योंकि दोनों का संबंध अंश-अंशी का संबंध है। शरीर की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हुए कबीरदास जी कहते हैं–

**"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।**
**देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा प्रभात।।"**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर ने आत्मा को ही जीव कहा है। आत्मा जब माया से संलिप्त हो जाती है तभी जीव कहलाती है। किंतु जीव जब ज्ञान स्वरूप होकर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है, तो आत्मा स्वरूप हो जाता है। उस स्थिति में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहता। शरीर को नश्वर कहा है। शरीर का विनाश होना निश्चित है। गीता में भी कहा गया है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। इसी प्रकार कबीर ने भी शरीर को विनाशशील कहा है।

**4. कबीर के माया संबंधी विचार**–कबीरदास ने अद्वैतवादियों की भांति ही माया को मिथ्या एवं भ्रम कहा है। श्रीमद्भगवतगीता आदि ग्रंथों में माया को ब्रह्म की स्त्री बताया है। शंकराचार्य ने माया को भावमय ब्रह्म माना है। यह सभी को भ्रमित करती है। कबीरदास ने माया के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है कि 'रजस, तमस और सत्व' सब तेरी माया है। सृष्टि का जन्म इसी माया से होता है। किंतु यह माया समूचे संसार को अपने वश में करके उसे चरित्र भ्रष्ट कर डालती है। इसीलिए कबीरदास माया को व्याभिचारिणी कहते हैं। माया सबको मोहित करती है। उससे कोई नहीं वच सकता–

**"तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेड़ै।**
**चतुर चिकारे चुणि मारे, कोइ न छोड़या नेड़ै।।**
**'मुनियर पीर दिगंबर मारे, जतन करता जोगी।**
**जंगत महि के जंगम मारे, तू रे फिरै बलिवंती।।**
**वेद पढ़न्ता ब्राह्मण मारा, सेवा करता स्वामी।**
**अरथ करता मिसर पछाड़्या, तू रे फिरै मैंमती।"**

माया संसार में अज्ञान का अंधकार फैलाती है। इसीलिए इसे उन्होंने पापिनी, विश्वासघातिनी, मोहिनी, साँपिणी, ठगिणी, डाकिनी आदि कहा है। आत्मा संसार में आकर इसी के जाल में फंसती है। सृष्टि के सारे संबंध माया-जन्य हैं, समस्त सृष्टि मायामय है–

**"कबीर माया पापणी फंद लै बैठी हाटि,**
**सब जग तो फंधै पाड़्या गया कबीरा काटि।।"**

माया काल्पनिक एवं सार रहित है। माया स्वयं तो अव्यक्त है किंतु व्यक्त की जननी है। माया विलय धर्मिणी भी है। सृष्टि का लय भी उसी के द्वारा होता है और विलय भी। माया ही दुख व संताप का कारण है। माया के जाल में पड़कर जीव नाना पाप व दुष्कर्म करता है तथा मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। माया जीव को धन-सम्पदा, मान-प्रतिष्ठा, कनक-कामिनी अनेक रूपों में आकृष्ट करती है। इसके प्रभाव से कोई नहीं बच सकता है। इसी की चमक-दमक में संपूर्ण जगत जल रहा है जिस प्रकार रुई में लिपटी आग। वह प्राणी को नाना रूपात्मक जगत् के क्षण भंगुर प्रलोभनों में फंसाकर उसकी शक्ति और बुद्धि का अपव्यय करती है। यह चंचला है, स्थिर नहीं है। हर रोज नये-नये प्राणियों को भ्रमित करती फिरती है–

**"कबीर माया पापणीं, लाले लाया लोग।**
**पूरी किनहूँ न मांग ई, इनका इहै विजोग।।"**

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीरदास के दार्शनिक विचार वेदों, उपनिषदों, अद्वैतवादियों से प्रभावित हैं। दर्शन के क्षेत्र में उनके विचार पूर्णतः भारतीयता को लिये हुए हैं। वे आत्मा और परमात्मा को एक मानते हैं। संसार को ईश्वर की सृष्टि मानते हुए भी उसे नश्वर कहते हैं। जीव आत्मा का ही स्वरूप है। आत्मा और परमात्मा में एकत्व है। माया कल्पित भ्रम है। उसी के कारण आत्मा आत्म से जीव बनती है। अतः कबीर का दर्शन अत्यंत गहन, अत्यंत सरल और पूर्णतः भारतीय है।

◆◆◆

## कबीर की भक्ति-भावना

**• कबीर की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।**

*अथवा*

**कबीर की भक्ति-भावना की विवेचना कीजिए।**

*अथवा*

**कबीर की भक्ति-भावना पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।**

**उत्तर–कबीर की भक्ति-भावना**–भक्ति शब्द संस्कृत की 'भज्' धातु में 'क्तिन् प्रत्यय' लगने से बना है। जिसका अर्थ है–ईश्वर को भजना अर्थात् भगवान की भक्ति करना अथवा अपने उपास्य के प्रति अनन्य भाव रखना। व्यास जी के अनुसार पूजा आदि में प्रगाढ़ प्रेम होना ही भक्ति है। **शांडिल्य भक्ति सूत्र** के अनुसार–परम अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है।

**सा परानुरक्तिरीश्वरे**

भागवत्कार का मत है कि सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति जब निष्काम रूप से भगवतोन्मुख होती है, तो उसे भक्ति कहते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार भगवान के माहात्म्य रचते हुए उनमें दृढ़ स्नेह रचना ही भक्ति है। नारद मुनि ने ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम को ही भक्ति कहा है। वे कहते हैं–

**सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च.....यल्लबध्या प्रमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्ती भवति।**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति में अनुराग की ही प्रधानता रहती है। जब तक आराध्य के प्रति अनुराग नहीं होगा तब तक भक्ति नहीं होगी। अतः निष्कर्ष रूप में भक्ति की इस प्रकार परिभाषा ही दी जा सकती है–"निष्काम भाव ईश्वर में अनुराग ही भक्ति है।"

कबीरदास एक सच्चे समान सुधारक, सर्वश्रेष्ठ चिंतक, समन्वयकारी संत और सच्चे ईश्वर भक्त थे। उत्तर भारत में उन्होंने ही भक्ति की धारा को प्रवाहित किया। उनसे पूर्व दक्षिण भारत में आलवार भक्तों ने भक्ति की स्थापना की और रामानुजाचार्य ने उसे शास्त्रीय रूप प्रदान किया। बाद में रामानन्द भक्ति को उत्तर भारत में ले आए। कबीर ने कहा भी है–

**"भक्ति द्राविड़ उपजो लाए रामानन्द।**
**परगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नव खण्ड।।"**

भारतीय चिंतनधारा में वैष्णव भक्ति के दो रूप मिलते हैं–

(क) सगुण भक्ति

(ख) निर्गुण भक्ति

कबीरदास निर्गुण भक्ति के ही पक्षधर थे। यही कारण है कि तत्कालीन संत कवियों में उनका विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए राम, शिव, हरि, केशव, खुदा, अल्लाह आदि नामों का प्रयोग किया है। उनका किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार भक्ति के स्वरूप का निर्धारण किया। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के अनुकूल थी लेकिन उन्होंने हिन्दुओं, मुसलमानों, सिद्धों, जैनियों आदि की रूढ़ियों, बाह्य आडम्बरों अंधविश्वासों आदि का जोरदार खंडन किया। कबीर की भक्ति-भावना का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

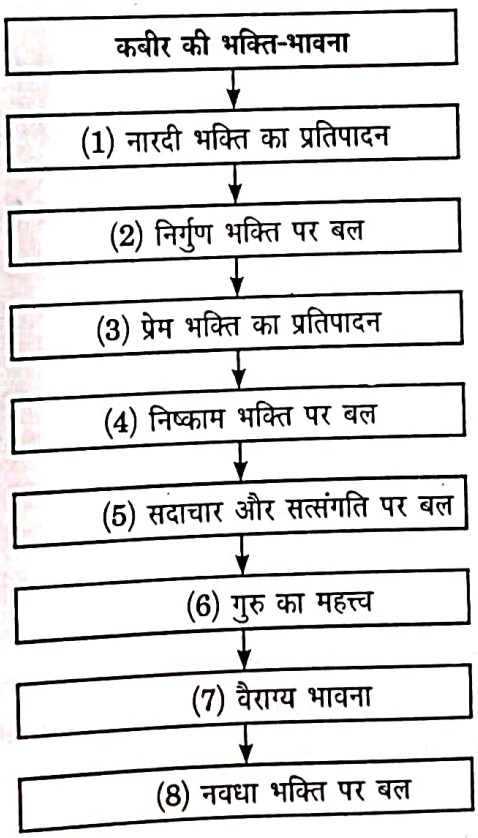

**1. नारदी भक्ति का प्रतिपादन**—कबीरदास मूलतः एक भक्त कवि थे। यही कारण है कि उनकी भक्ति- भावना सर्वथा मौलिक कही जा सकती है। परन्तु नारद भक्ति सूत्र से वे अत्यधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। इसी भक्ति द्वारा ही वे भवसागर को पार करना चाहते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं—

**'भगति नारदी मगन सरीरा,**
**इह विधि भव तरी कहे कबीरा।'**

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को कर्म, ज्ञान तथा योग से अधिक शक्तिशाली कहा गया है। कबीरदास इसी विचार का समर्थन करते हैं। उनका स्पष्ट कथन है कि भक्ति-भावना के बिना योग साधना निष्फल है। निष्काम भावना से की गई भक्ति ही सच्ची भक्ति है। कबीरदास जी कहते भी हैं—

**'सुध-बुध होई भज्यों नहीं सांई, काछयो उमंग उदत कै तांई।**
**हिरदै कपट हरि सूं नहीं सांचौ, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ।।'**

परन्तु कबीरदास ने नारदी भक्ति के साथ-साथ प्रेमा भक्ति को भी स्वीकार किया है। प्रेमा भक्ति का भी वही महत्त्व है जो नारदी भक्ति का है। कबीरदास कहते भी हैं—

**"प्रेम भक्ति ऐसी कीजिए, मुनि अमृत वरिषै चंद।**
**आपही आप बिचारिये, तब केता होई आनंद रे।।"**

कबीरदास मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। यही कारण है कि उनकी भक्ति-भावना में सगुण भक्ति का कोई स्थान नहीं है। भले ही उन्होंने कुछ स्थलों पर वैष्णवों के प्रति अपनी श्रद्धा और आस्था को व्यक्त किया है। परन्तु वे वैष्णव भक्त कदापि नहीं थे। संभव है उनके मन में थोड़ा-बहुत झुकाव वैष्णव भक्ति की ओर रहा हो और उन्होंने कह दिया—

**मेरे संगी दोई जणां, एक वैष्णों एक राम**
**वैष्णों की छपरी भली, न साकत को बड़ गाऊँ।**

किन्तु कबीर ने रामानन्द की भक्ति-भावना का समर्थन करते हुए भी जाति-पाति का घोर विरोध किया और कहा—

**'जाति-पाति पूछैं नहिं कोई।**
**हरि को भजै सो हरि का होई।।'**

**2. निर्गुण भक्ति पर बल**—भले ही कबीरदास रामानन्द के प्रति आस्थावान थे और राम-नाम का मंत्र भी उन्होंने अपने गुरु से ही ग्रहण किया। परन्तु उन्होंने सगुण भक्ति को त्याग कर निर्गुण भक्ति को ही स्वीकार किया। उन्होंने बार-बार तुलसी के दाशरथि राम का खण्डन किया और अपने घट-घटवासी राम की भक्ति का समर्थन किया। वे कहते भी है—

**दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना।**
**राम नाम का मरम है आना।।**

वे न तो अपने प्रभु की पूजा करते हैं न नमाज करते हैं लेकिन अपने हृदय से उस निराकार ईश्वर को नमस्कार करते हैं फिर भी कुछ पाठकों में यह भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि कबीरदास सगुणोपासक थे। कबीर वाणी में ऐसे असंख्य स्थल प्राप्त हो जाते हैं जहाँ वे कभी-कभी सगुण साकार तथा अवतारी पुरुष की भी चर्चा कर लेते हैं परन्तु इस आधार पर उनको सगुणवादी नहीं कहा जा सकता। वे पूर्णतः निर्गुणवादी थे और निर्गुण-निराकार ही भक्ति में ही विश्वास करते थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा भी है—"कबीर के निर्गुण ब्रह्म में गुण का अर्थ सत्त, रज, आदि गुण हैं। इसलिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ वे निराकार निरसीम आदि समझते हैं, निर्विषय नहीं।" अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि कबीर की भक्ति-भावना निर्गुण थी। एक उदाहरण देखिए—

**"निर्गुण राम जपहुं रे भाई।**
**अविगत की गति लखि न जाई।।"**

*अथवा*

**"अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।**
**त्रिदेव शाखा भये, पात भया संसार।।"**

**3. प्रेम भक्ति का प्रतिपादन**—कबीर की भक्ति पद्धति में माधुर्य भाव भी विद्यमान है। माधुर्य भक्ति में परमात्मा के प्रति जो विरह की तीव्रता पाई जाती है वही कबीर के विरह वर्णन में विद्यमान है। भले ही कबीर के विरह भाव पर सूफी मत का प्रभाव हो परन्तु इसमें भारतीय माधुर्य भाव की अधिकता अधिक है। कबीर की विरहिणी प्रिया परमात्मा के विरह में छटपटाती हुई दिखाई गई है जिसे किसी भी स्थिति में चैन प्राप्त नहीं होता।

**बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।**
**जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मन नाहीं विश्राम।।**

विरहिणी आत्मा की बेचैनी और व्याकुलता इस सीमा तक पहुँच जाती है कि विरह की पीड़ा उसके लिए असह्य हो जाती है और वह मरण को श्रेयस्कर मानने लगती है—

**कै विरहिणी कूं मींच दे, कै माया दिखलाइ।**
**आठ पहर का दाझणां, मोपैं सह्या न जाइ।।**

यही नहीं, विरहिणी अपने प्रियतम को पाने के लिए अपने शरीर तक को जलाने के लिए तत्पर हो जाती है—

**यह तन जालौं मसि करूँ, ज्यू धूवां जाइ सरग्गि।**
**मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै भग्गि।।**

**4. निष्काम भक्ति पर बल**—कबीरदास ने निष्काम भक्ति पर बल दिया है। इन्होंने सकाम भक्ति का हमेशा विरोध किया तथा यह कहा कि—

**"जब लगि भक्ति सकामता।**
**तब लग निष्फल सेव।।"**

वे अपने प्रभु के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। राम की भक्ति के सामने उन्हें संसार के समस्त लोग यहाँ तक की स्वर्ग का आनन्द भी हीन लगता है। भगवान के बिना उन्हें स्वर्ग की भी इच्छा नहीं है। वे तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि—

**भिस्त न मेरे चाहिए, वाज प्यारे तुझ।**

कबीरदास ने अपने निर्गुण प्रियतम को पाने के लिए अनेक प्रकार के रूपकों की रचना की है। वे प्रभु को पाकर उसे अपनी आँखों में बंद कर लेना चाहते हैं—

**नैनां अन्तरि आव तूं, ज्यों ही नैन झर्पेउं।**
**ना मैं देखूं और कू, ना तुझ देखन देउं।**

**5. सदाचार और सत्संगति पर बल**—कबीरदास ने अपनी भक्ति में सत्संगति पर बल देते हुए सदाचार के आचरण को आवश्यक माना है बल्कि सदाचरण तो उनकी भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। सदाचार तभी संभव है जबकि भक्त आचरण सम्बन्धी सभी सांसारिक विकारों से रहित हो। सांसारिक विकारों में कवि ने कनक और कामिनी दोनों की निंदा की है। साथ ही कबीर का यह भी कहना है कि सदाचरण को ग्रहण करने के लिए मानव को कुसंगति को त्याग करना चाहिए।

**कबीर संगति साध की, वेगि करीजै जाइ।**
**दुरमति दूर गँवाइ सो, देखि सुरति बताई।।**

कबीरदास ने यह भी स्वीकार किया है कि सत्संगति तथा गुरु उपदेश से भक्ति मार्ग की बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। कवि का कथन है कि सत्संगति कभी निष्फल नहीं जाती। वे कहते भी हैं—

**"कबीर संगत साध की, कदे न निसफल होई।**
**चंदन होसी बांवना, नीवं न कहसी कोई।।"**

**6. गुरु का महत्त्व**—कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति में गुरु को शीर्षस्थ स्थान दिया है और गुरु को गोविन्द से भी बड़ा बनाया है। गुरु द्वारा ही साधक अपने साध्य को प्राप्त कर सकता है क्योंकि गुरु ही साधक और साध्य को मिलाने वाला माध्यम है।

इसलिए कबीरदास ने गुरु की प्रशंसा करते हुए कहा है–

**गुरु गोबिन्द दोनों खड़े काके लागू पाँय।**
**बलिहारी गुरु आपने जिन गोबिंद दिया बताय।।**

कबीर का कथन है कि सच्चे गुरु की महिमा अनन्त है और वह अपने शिष्य पर अनन्त उपकार करता है। वहीं अपने शिष्य के दिव्य नेत्र खोलता है और वही उस अनन्त, निराकार प्रभु के दर्शन करने में समर्थ होता है। लेकिन कबीरनदास ने कृत्रिम गुरुओं की भर्त्सना की है क्योंकि उनके कारण शिष्य का जीवन बर्बाद हो जाता है। वे कहते भी हैं–

**जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।**
**अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़त।।**

**7. वैराग्य भावना**–सांसारिक विषय वासनाओं के प्रति अनासक्ति को वैराग्य भावना कहा गया है। कबीर का कथन है कि यह संसार सैम्बल के फूल के समान नश्वर है और यह तन कच्चा घड़ा है। इसी संदर्भ में उन्होंने माया की भी निन्दा की है क्योंकि माया जहाँ एक ओर भक्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। वहां दूसरी ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को उत्पन्न करती है, कबीर ने विषय वासनाओं तथा माया का खंडन किया और वैराग्य भाव को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। कबीर ने माया को महाठगनी कहा है। वे कहते भी हैं–

**कबीर माया पापिनी हरि सो करे हराम।**
**मुख कड़ियाली कुमति की कहन न देइ राम।।**

× × × × × × ×

**कबीर माया डाकिनी सब किस ही को खाय।**

कबीर का कथन है कि वैराग्य भावना-भक्ति को सुदृढ़ बनाती है यह मन की आन्तरिक वृत्ति है जिससे भक्ति की प्राप्ति होती है परन्तु इस संदर्भ में कबीरदास ने सिर मुंडवाने वाले और भगवे वस्त्र पहनने वाले ढोंगी साधुओं की निंदा भी की है। इसके साथ-साथ कबीर ने ज्ञान तथा योग पर भी बल दिया है।

**8. नवधा भक्ति पर बल**–श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति के जो नौ भेद बताए गए हैं, वे सभी कबीर की वाणी में विद्यमान हैं। ये नौ भेद हैं–नाम स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वंदन, अर्चन, दास्य, पाद सेवन, सख्य तथा आत्मनिवेदन। भागवत्कार लिखते भी हैं–

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।**

**(i) नाम स्मरण**–कबीरदास नाम को ही ब्रह्म मानते हैं। उनका कथन है कि नाम स्मरण द्वारा ही साधक इस नश्वर संसार से मुक्ति पा सकता है। सभी वेदों का भी यही सार है। अतः साधक को एकाग्र मन से निरंतर राम-नाम का स्मरण करना चाहिए। कबीर ने राम-नाम को किन्नर लोकों में सर्वश्रेष्ठ माना है–

**"तत तिलक तिहूँ लोक मैं, रांम नाम निज सार।**
**जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।।"**

**(ii) कीर्तन**–कबीरदास जी ने कीर्तन अथवा ईश्वर के गुणों के गान पर भी बल दिया है। एक बार भक्ति के आवेश में आकर कबीरदास अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को भूल जाते हैं और निर्गुण गान के दिव्य गुणों का गान करने लग जाते हैं। वे कहते हैं–

**कबीर सूता क्या करे, गोविन्द के गुण गाई।**
**गुण गाय गुण न कटे, रटे न राम वियोग।**

**(iii) श्रवण**–इस अवस्था में भक्त प्रभु के नाम अथवा गुणों का श्रवण करता है क्योंकि श्रवण से ही भक्त में भक्ति भाव उत्पन्न होता है। कबीरदास जी कहते भी हैं–

**वाहु वाहु क्या खूब गावता है।**
**हरि का नाम मेरे मन भावता है।।**

**(iv) वंदन**–ईश्वर की दया प्राप्त करने के लिए कबीरदास ने वंदना को आवश्यक माना है। यह स्थिति कबीर की वाणी में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है–

**माधौ कब करि हौ दाया।**
**काम क्रोध हंकार विषादै नां छूटे माया।।**
**उतपति बिंदु भयौ जा दिन तैं कबहूं सचु नहिं पायौ।**
**पंच चोर संगि लाइ दिए हैं इन संगि जनम गंवायौ।।**
**कहै कबीर दुख कासौं कहिए कोई दरद न जानै।**
**देहु दीदार बिकार दूर करि तव मेरा मन मानै।।**

**(v) अर्चन**–अर्चन का अर्थ है–ईश्वर की पूजा विधि। निर्गुण संत कवि होने के कारण कबीर का अर्चन विशेष प्रकार का है। कबीर ने परंपरागत अर्चन विधियों का निषेध किया और मन में संयम तथा मन की पवित्रता पर बल दिया। इसे वे अन्तः अर्चन कहते हैं । वे कहते भी हैं–

**देल माटै देहुरी तिल जैसे विस्तार।**
**मांहे पाती माहि जल, माटे पूजणहार।।**

× × × × × ×

**पूजहूं राम एक ही देवा।**
**सांचा नांवगुण गुरु की सेवा।।**
**अन्तरि मैल जो तीरथ हावै तिन बैकुण्ठ न जानां।**
**लोक मतीत कछू नां होवै नहीं राम अपानां।।**

**(vi) दास्य और पाद सेवन**–कबीरदास ने स्वयं को भगवान का दास कहा है। अनेक स्थलों पर तो वे स्वयं को भगवान का कुत्ता तक कह देते हैं। यही नहीं वे स्वयं को राम का गुलाम मानते हुए उनकी कृपा की याचना करने लगते हैं। कबीर की दास्य भावना उस समय चरम सीमा को पहुंच जाती हैं जब वे स्वयं को भगवान का कुत्ता कहते हैं–

**कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नांऊं।**
**गले राम की जेवंड़ी जित खैचें जित जाऊँ।।**

**(vii) सख्य**–इस स्थिति के अन्तर्गत कबीरदास स्वयं को ईश्वर के मित्र के रूप में देखते हैं और वे प्रभु को अपना दोस्त मानने लगते हैं।

**कुछ करनी कुछ करम गति कुछ पुरव लेख।**
**देखो भाग कबीर का दोसत किया अलेख।।**

**(viii) आत्म-निवेदन**–कबीरदास की भक्ति-भावना में आत्म-समर्पण के भाव देखे जा सकते हैं। प्रभु के समक्ष वे दीन और विनयशील दिखाई देते हैं। वे कहते हैं–

**मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।**
**तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मेरा।।**

**निष्कर्ष**–संक्षेप में कह सकते हैं कि कबीरदास सगुण भक्ति के कभी भी पक्षधर नहीं रहे, वे केवल निर्गुण- निराकार ईश्वर की भक्ति में ही विश्वास करते थे। परंतु जब कभी वे भक्ति-भावना में बहकर प्रभु का गुणगान करने लगते हैं तो नवधा भक्ति की स्थितियाँ स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं और वे प्रभु के प्रति अपने सम्बन्धों को व्यक्त करने लगते हैं। वे भले ही निर्गुण सन्त कवि थे, परन्तु उच्च कोटि के भक्त कवि भी थे।

◆◆◆

**प्रश्न . भक्ति आंदोलन से आपका क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर**–आचार्य शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल का नाम दिया है। इस काल में केवल भक्ति साहित्य ही लिखा गया और उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का श्रीगणेश हुआ। भक्तिकाल का आरंभ संवत् 1050 में हुआ और सवंत् 1375 ई. तक चलता रहा। भक्ति आंदोलन का उद्भव हमारे देश में ही हुआ है। भले ही कुछ विद्वानों ने इसे मुस्लिम धर्म अथवा ईसाई धर्म से जोड़ने का प्रयास किया हो। कबीरदास ने एक स्थल पर कहा भी है–

**भक्ति द्रविड़ उपजि लाए रामानन्द,**
**प्रकट करि कबीर ने सात द्वीप नौ खण्ड।**

डॉ. सत्येन्द्र ने इस सच्चाई का उद्घाटन किया कि भक्ति का उद्भव द्राविड़ों द्वारा किया गया और रामानन्द उसे उत्तर भारत में ले आए। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन शुद्ध भारतीय आंदोलन है। इसे किसी भी दृष्टि से विदेशी आंदोलन नहीं कह सकते। दक्षिण भारत में आलवार भक्तों ने भक्ति आंदोलन का सफल संचालन किया और यह दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आया।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन से दो मुख्य काव्यधाराएं प्रवाहित हुईं–निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा। निर्गुण काव्यधारा का सम्बन्ध सूफियों एवं संतों के काव्य से है। नामदेव और कबीर ने इस धारा का प्रवर्तन किया। आचार्य शुक्ल ने इसे निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा की संज्ञा दी है। परन्तु आचार्य द्विवेदी इसे निर्गुण साहित्य कहते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे संत काव्य परंपरा कहा है। सूफी काव्य परंपरा को सूफी प्रेमाख्यानक काव्य पंरपरा कहा जाता है। जायसी, मंझन, कुतुबन, शेख नवी इसके प्रमुख कवि हैं। सगुण काव्य परंपरा में राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा की चर्चा की जाती है। तुलसीदास राम काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं और सूरदास कृष्ण काव्यधारा के। भक्ति आंदोलन पर पाशुपतों, शैवों, नाथपंथियों, सिद्धों आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। परन्तु उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द और उनके अनुयायियों ने भक्ति आंदोलन का प्रचार-प्रसार किया। यही कारण है कि भक्ति आंदोलन में वैष्णव की विशेष भूमिका रही है। इस युग में द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि से सम्बन्धित सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय विकसित हुए। कबीरदास रामानन्द के शिष्य थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप निर्गुण काव्यधारा को चलाया। नानक, दादू, रैदास, रज्जबदास, मलूकदास आदि ने इस मत का प्रचार-प्रसार किया। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में कबीर की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

**प्रश्न . कबीर के साहित्य के मूल प्रतिपाद्य का सार रूप में उल्लेख कीजिये।**

**उत्तर**–कबीर पहले संत हैं और बाद में कवि हैं। कबीर के लिए प्रभु भक्ति साध्य है और काव्य उनके लिए भक्ति-भावना के प्रचार-प्रसार व अभिव्यक्ति का साधन है। अतः स्पष्ट है कि कबीर काव्य का मूल प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक अनुभूति है। उस पारब्रह्म, निर्गुण, निराकार, निरंजन के दर्शन उसके प्रति प्रेम, संयोग-वियोग के क्षणों की अनुभूति आदि उनके काव्य का भाव पक्ष है। कवीरदास ने इस अनुभूति को अत्यंत सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। ऐसे अवसर पर कबीर के ज्ञानी, भक्त, रहस्यवादी तथा योगी सभी प्रकार के व्यक्तित्वों की अनुभूति का परिचय मिलता है। वास्तव में ईश्वर के प्रति प्रेम और उसकी सौंदर्यानुभूति ही कबीर की वाणी का प्रमुख प्रतिपाद्य है। अपने काव्य के मूल प्रतिपाद्य का वर्णन करते समय उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त धर्म के नाम पर किये गये दिखावे व आडंवरों का खंडन भी किया है तथा जड़ परंपराओं पर जमकर प्रहार किया है।

कबीर की अनुभूति का आलंबन निर्गुण, निराकार ब्रह्म है। उस ब्रह्म के रूप का वर्णन शब्दों के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में उनका कथन है–

**पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।**
**कहिबे कू सोभा नहिं देख्या ही परमान।।**

कबीरदास ने उस पारब्रह्म की अनुभूति को विविध प्रकार के संबंध जोड़कर भी अभिव्यंजित किया है। वे कभी उसे अपना स्वामी और स्वयं उसकी वधू बताते हैं तो कभी जननी कभी स्वामी और स्वयं को सेवक कहते हैं। उन्होंने प्रतीकों की योजना के माध्यम से अपने प्रेम की अनुभूति को व्यक्त किया है। कबीर का यह आध्यात्मिक प्रेम अत्यंत सूक्ष्म एवं आभ्यंतर है–

**हरि जननी मैं बालक तोरा।**
**काहे न अवगुन बकसहु मोरा।।**
× × × × ×
**हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,**
**राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।।**

**प्रश्न कबीरदास की भक्ति-भावना को स्पष्ट कीजिये।**

*अथवा*

**कबीरदास की भक्ति-भावना पर एक टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजना। 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' में भक्ति-भावना पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–"ईश्वर में परम अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है।" आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने भक्ति पर विचार प्रकट करते हुए कहा है–"श्रद्धा एवं प्रेम के योग का नाम भक्ति है।" इसी प्रकार 'श्रीमद्भगवत' में "निष्काम भाव को ही भक्ति का रूप स्वीकार किया गया है।" सार रूप में कहा जा सकता है कि ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से अनुरक्ति, प्रेमभावना, स्मृति, श्रद्धा आदि भावों के समन्वित रूप को भक्ति-भावना कहा जा सकता है। कबीरदास ने ईश्वर के प्रति गहन आस्था एवं विश्वास को आधार बनाकर जन-जन के लिए भक्ति भाव का प्रचार प्रसार किया है। कबीर की भक्ति-भावना लोकजीवन के निकट थी। कोई भी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के प्रभु भक्ति का भाव रख सकता है। इस प्रकार कबीरदास ने जन-साधारण को तथा अछूत लोगों को भी प्रभु-भक्ति के साथ जोड़ने का महान कार्य किया था।

कबीरदास की भक्ति यद्यपि काम रूपा है, किंतु उसमें संबंध रूपा के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। वह अपने आराध्य से विभिन्न संबंध स्थापित करके उसकी भक्ति करना चाहते हैं, यथा–

**"कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।**
**गले राम की जैबड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ।।"**

इसी प्रकार अपने राम से अन्य संबंध स्थापित करके कबीर उसकी समीपता को अनुभव करते हैं–

**"मोरे घर आए राम भरतार।**
**तन रत्ति कर मैं मन रति करिहौं, पाँचों तत्त्व बराती,**
**रामदेव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती।।"** **(कांता भक्ति)**
× × × × × × ×
**"हरि जननी मैं बालक तोरा।**
**काहे न अवगुण बकसहु मोरा।।"** **(वात्सल्य भक्ति)**

प्रेमा रूपा भक्ति को मुख्यतः तीन वर्गों में रखा गया है–(1) गौण, (2) मुख्य, (3) अनन्य।

कबीरदास की भक्ति 'अनन्य' कोटि की भक्ति भावना है क्योंकि इसमें 'सब तज हरि' भजन की भावना रहती है।

गौण भक्ति के भी तीन भेद माने गये हैं–(1) सात्विकी, (2) राजसी, (3) तामसी। कबीर की भक्ति- भावना सात्विकी कोटि में आती है।

**प्रश्न "कबीर के काव्य में निर्गुण ईश्वर की उपासना पर बल दिया गया है"–इस कथन की समीक्षा कीजिये।**

उत्तर–कबीरदास ने संत कवियों की परंपरा के अनुकूल ही निर्गुण ईश्वर में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है और निर्गुणोपासना भी की है। कबीर की भक्ति निर्गुण ईश्वर की उपासना की भावना उपनिषदों की अद्वैतवादी चेतना से प्रभावित है। किंतु कबीर का ब्रह्म वर्णन उनके अनुभव पर आधारित है। उन्होंने ब्रह्म को जिस-जिस रूप में अनुभव किया उसी रूप में उसका वर्णन भी किया। कबीर की निर्गुण ईश्वर की भक्ति दार्शनिक घेरे में नहीं समा सकती है। वे तार्किक विवाद से ऊपर हैं, उसे पुस्तकीय ज्ञान से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह अनुभूति का विषय है और उसे गहन भाव से प्राप्त किया जा सकता है। कबीरदास ने अपने निर्गुण ईश्वर के विषय में कहा है–

**"अंजन आवै अंजन जार, निरंजन सब घटि रह्यौ समाई।**
**जो ध्यान तब सबै विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार।।"**

अनुभूति के विविध स्तरों के द्वारा ही कबीर का ईश्वर कहीं अद्वैत है तो कहीं द्वैताद्वैत और कहीं विशिष्टाद्वैत। किंतु कबीर के ब्रह्म अधिकांशतः अद्वैत रूप में ही व्यक्त हुए हैं।

कबीर का राम दशरथ सुत राम नहीं है। उनका राम तो घट-घट वासी है। कबीर तो ऐसे ईश्वर की उपासना पर बल देते हैं जो सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, सर्वोपरि एवं परात्पर ब्रह्म है। वह वाणी, मन व बुद्धि के लिए अगम एवं अगोचर है। कबीर को अपने ऐसे निर्गुण ब्रह्म में ही सभी धर्मों के देवी-देवता दिखाई देते हैं।

कबीरदास ने अपने ईश्वर को निर्गुण व सगुण दोनों से परे बताया है। वे ऐसा कहकर अपने ईश्वर को हर प्रकार के द्वंद्व से परे का सिद्ध करना चाहते हैं। उनका ईश्वर तो केवल अनुभवगम्य है। अतः वह इन्द्रियातीत भी है। कबीरदास ने अपने ईश्वर को 'तत्', 'सत्' आदि नामों से पुकारा है तथा उसका सर्वकालिक अस्तित्व स्वीकार किया है। अगोचर व अगम्य जब विचार का विषय बन जाता है तो उसे नाम देना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि नाम रूपवाले परम तत्व की भक्ति ही संभव है। कबीर की दृष्टि में ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित भावना का होना अनिवार्य है।

**प्रश्न 5. कबीर साहित्य पर हिन्दू धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। सोदाहरण विवेचन करें।**

**उत्तर**–भले ही कबीरदास ने हिन्दू धर्म का विरोध किया हो परन्तु यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा कि कबीर के धार्मिक विचारों पर वेदों तथा उपनिषदों का प्रभाव है। जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद को कबीर ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। वे उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म तथा आत्मा के स्वरूप से भी पूर्णतया परिचित थे। फलस्वरूप कबीरदास ने आत्मा तथा परमात्मा में अभेद की स्थापना की। उन्होंने गीता के इस रहस्य को समझ लिया कि यह शरीर नश्वर है। कबीर ने भी कहा कि जो उत्पन्न हुआ है वह निश्चय से नष्ट होगा। मानव शरीर को नाशवान मानते हुए वे कहते हैं–

**यह तन काच्चा कुंभ है लिया फिरै था साथ।**
**डबका लग्या टूट गया कुछ न आया हाथ।।**

कभी-कभी तो कबीरदास भगवद् गीता और उपनिषदों की भाषा बोलने लगते हैं। उपनिषदों में भी उपवास, मूर्ति पूजा, जप-तप, तीर्थ यात्रा आदि का विरोध किया गया है। कबीरदास जी कहते हैं–

**"क्या जप क्या तप संयमा व्रत क्या अस्नान।**
**जब लग मुक्ति न जानिये क्या भक्ति भगवान।।"**

यद्यपि कबीरदास ने हिन्दुओं को फटकार भी लगाई है परन्तु वैष्णव धर्म के प्रति उनके मन में सहानुभूति थी। परन्तु शाक्तों से वे सख्त घृणा करते थे। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

**वैष्णव की छपरी भली ना बड़ साक्त को गाँव।**

परन्तु कबीरदास ने कुछ अन्य स्थलों पर वैष्णवों में व्याप्त बुराइयों और आडम्बरों की आलोचना की है। जो वैष्णव छापा, तिलक लगाकर वैष्णव होने का ढोंग करते हैं, उन्हें वे फटकारते हैं।

**बैसनो भया तो क्या भया, पूरन नहीं विवेक,**
**छाया तिलक बनाई करि दग्धया लोक अनेक।**

हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि कुछ स्थलों पर उन्होंने मंडनात्मक उपदेश दिए हैं और धर्म की सहज व्याख्या की है। पाखंडों से दूर रहने वाले धर्म साधकों को वे अपने आराध्य राम तथा गुरु की सेवा की सलाह देते हैं यही नहीं वे रामायण,

महाभारत आदि से भी परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी वाणी से प्रह्लाद भक्त, ध्रुव भक्त, विभीषण, नारद आदि का वर्णन किया है। लेकिन उन्होंने हिन्दुओं की जो आलोचना की है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे हिंदुओं में व्याप्त बाह्य आडम्बरों और रूढ़ियों को समाप्त करना चाहते थे और समाज का कल्याण करना चाहते थे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कबीरदास के साहित्य पर हिन्दू धर्म का स्पष्ट प्रभाव है।

**प्रश्न कबीर वाणी पर मुस्लिम धर्म का प्रभाव है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर–कबीरकालीन शासक मुस्लिम धर्म को मानने वाले थे। वे इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। कुछ मुस्लिम शासक तो हिन्दुओं पर अत्याचार भी कर रहे थे। कबीर शासक हिन्दू-मुस्लिम, वैमनस्य को भली प्रकार समझते थे। वस्तुतः कबीरदास ने यह अनुभव किया कि उनको इस प्रकार के धार्मिक विचार का प्रवर्तन करना चाहिए जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को स्वीकार्य हों। यही कारण है कि उन्होंने निर्गुण-निराकार ईश्वर की भक्ति पर बल दिया और मूर्ति पूजा का खंडन किया। यह निर्गुण भक्ति इस्लाम धर्म के विचारों से मेल खाती थी। दूसरी ओर कबीर की भक्ति पद्धति वेदों और उपनिषदों तथा शंकराचार्य के निर्गुण मत से भी मेल खाती थी। भले ही कबीरदास ने धार्मिक संकीर्णता को दूर करने के लिए बाह्य आडम्बरों की आलोचना की लेकिन फिर भी इस्लाम धर्म के अनुयायियों के प्रति उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत नरम था। लेकिन कबीरदास ने रोजा, नमाज, हज, हलाल आदि की तो कटु आलोचना की। यहाँ तक कि काजी, मुल्ला, शेख, दरवेश आदि को भी क्षमा नहीं किया। एक स्थल पर वे कहते हैं–

**कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय।**
**ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।**

कबीर युग में हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में काफी विरोध चल रहा था। इस्लाम धर्म में मान्यता है कि जो मुसलमान नहीं है वह काफूर है जो सच्चा मुसलमान है उसे जन्नत नसीब होती है। दूसरी ओर मुस्लिम शासक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना रहे थे। यही कारण है कि कबीर ने मुस्लिम धर्म से प्रभावित होते हुए भी उनके बाह्य आडम्बरों आदि की भी कठोर निंदा की। यहाँ तक कि इस्लाम धर्म के ठेकेदार बने हुए काजियों को उन्होंने पथभ्रष्ट कहा। वे उन्हें फटकारते हुए कहते भी हैं–

**"काजी मुलां भ्रमिया चल्या दुनी कै साथि।**
**दिल थे दीन बिसारिया करद लई जब हाथि।।**
**यह सब झूठी बंदिगी विरिथा पंच निवाज।**
**सांचै मारे झूठि पढ़ि काजी करै अकाज।।"**

हमें यह नहीं भूलना होगा कि कबीर का पालन-पोषण मुस्लिम परिवार में हुआ था। यही कारण है कि उनके विचारों पर इस्लाम धर्म का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। एक कारण यह भी है कि यह उस समय की मांग थी क्योंकि तत्कालीन मुस्लिम शासक हिन्दू धर्म की मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। अतः कबीरदास ने निर्गुण ईश्वर की वंदना पर बल दिया और ईश्वर का यह स्वरूप मुसलमानों के अल्लाह से बहुत कुछ मेल खाता है।

**प्रश्न कबीर साहित्य पर नाथ सम्प्रदाय का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। स्पष्ट करें।**

उत्तर–सिद्धों में व्याप्त बुराइयों की प्रतिक्रिया के रूप में नाथ सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में नाथ सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रभाव था। इस सम्प्रदाय ने आगे चलकर कबीर की वाणी को प्रभावित किया। वस्तुतः गुरु गोरखनाथ ने ही नाथ सम्प्रदाय के विचारों का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया था। राहुल सांकृत्यायन ने उनको बौद्ध धर्म के वज्रयान का आचार्य कहा है। भक्ति आंदोलन से पूर्व गोरखनाथ का योगमार्ग देश भर में प्रचलित था। गोरखनाथ का समय 10वीं शताब्दी माना गया है। 'गोरख वानी' में गुरु को विशेष महत्त्व दिया गया है। कबीरदास ने भी अपनी वाणी में गुरुदेव कौ अंग के अन्तर्गत गुरु के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। गुरु गोरखनाथ के समान कबीरदास ने भी स्वीकार किया है कि गुरु ही वास्तविक रहस्य का ज्ञाता होता है। कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति अपने श्रद्धा भाव को व्यक्त किया है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि गोरखनाथ कबीर की अनुभूति के प्रेरणा-स्रोत थे। गोरखवाणी तथा कबीर वाणी में ऐसे अनेक पद हैं जो लगभग समान प्रतीत होते हैं। गोरख वाणी में कहा गया है–

**"डूंगरी मंछ जलि सुसा पांणो में दौ लागा।"**

अर्थात् मछली पहाड़ पर पहुँच जाती है और रासा जल में रह जाता है और पानी अन्त में जल जाता है। वस्तुतः यह एक उलटबांसी है। कबीरदास जी कहते हैं–

**"समंदर लागी, आगि, नदियां जलि कोइला भई।**
**देखि कबीरा जागि, मंछी अषां चढ़ि गई।।"**

इस प्रकार कबीरदास ने जिस उल्टबांसी शैली का प्रयोग किया है, वह गुरु गोरखनाथ की शैली से सर्वथा मेल खाती है। इसके साथ-साथ गोरखनाथ का हठ योग निर्गुण सम्बन्धी चिंतन तथा भक्ति भावना कबीर वाणी में देखी जा सकती है। ऐसी अनेक साखियाँ हैं जो गोरख वाणी के छन्दों से मेल खाती हुई प्रतीत होती हैं। अतः यह कहना सर्वथा संगत होगा कि कबीर वाणी नाथ सम्प्रदाय से अत्यधिक प्रभावित है।

**प्रश्न कबीर के कृतित्व का परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–कबीर के कृतित्व को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। क्योंकि उनके नाम के साथ रचनाओं की लम्बी संख्या जुड़ी हुई है। पाश्चात्य विद्वान एच.एच.विल्सन ने कबीरदास की आठ रचनाओं की सूचना दी है। परन्तु पादरी वैस्ट कांट ने यह संख्या 82 मानी है। डॉ. रामकुमार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कबीर के ग्रंथों की संख्या 56 है। परंतु जब वे कबीर ग्रंथों की तालिका बनाने लगे तो यह संख्या 85 तक पहुँच गई। **डॉ. ड़थवाल** ने कबीर की रचनाओं की संख्या 40 मानी है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन ने इस संदर्भ में गंभीर चिंतन किया है परंतु वे भी किसी निश्चित मत तक नहीं पहुँच सके। परंतु इतना निश्चित है कि बीजक, आदि ग्रंथ तथा कबीर ग्रंथावली इन तीन रचनाओं में सबका उल्लेख किया है। 'आदि ग्रंथ-सिक्ख धर्म द्वारा पूजित ग्रंथ है। इसे गुरु ग्रंथ साहिब कहा भी गया है। इसमें कबीर के पदों का संकलन सम्वत् 1661 ई. के भादों महीने की प्रतिपदा को हुआ। बीजक तो कबीर पंथियों का पूजित ग्रंथ है। वे इसे प्रमाणित ग्रंथ मानते हैं। कबीर ग्रंथावली में कबीर पंथियों की पंचवाणियों का संकलन है। इसका प्राचीनतम लिपिकाल सम्वत् 1561 माना जाता है। लेकिन ग्रंथावली की अन्तिम पष्ठिलिपि में मतभेद है। अतः इसे विश्वसनीय नहीं माना जाता। ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जो थोड़े बहुत भेद के साथ बीजक, आदि ग्रंथ तथा कबीर ग्रंथावली में संकलित हैं। डॉ. पारस नाथ तिवारी ने इन सभी ग्रंथों को आधार बनाकर कबीर ग्रंथावली का सम्पादन किया। जिसका प्रकाशन सन् 1961 ई. में हिंदी परिषद् प्रयाग द्वारा किया गया। डॉ. तिवारी ने 200 पदों, 20 रामायणियों, चौतिसी तथा 40 साखियों को प्रमाणिक माना है। इधर कबीर बीजक, कबीर की वाणी, सत्य कबीर की वाणी आदि संकलन भी प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त कबीर कसौटी, कबीर पंथियों का प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें लिखा गया है कि श्री कबीर जी के ग्रंथों की जिल्द 1521 में बंद हो चुकी थी तथा श्री नानक वाणी की जिल्द 1661 में बंद हो गई थी। उपरोक्त सभी रचनाओं में काशी नगरी प्रचारणी सभा द्वारा कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन हुआ जिसके सम्पादक डॉ. श्याम सुन्दर दास हैं।

**प्रश्न कबीर युग की सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।**

*अथवा*

**कबीरकालीन सामाजिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–कबीर के युग में भारतीय समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इस युग में मुगलों के राज्य की स्थापना हो चुकी थी। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष के साथ-साथ आपस में विविध क्षेत्रों में आदान-प्रदान होने लगा था। किन्तु हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था के कारण कुछ नियम अत्यन्त कठोर हो गए थे। रामानन्द व कबीरदास ने इसके विरुद्ध जोरदार शब्दों में आवाज उठाई। हिन्दू व मुसलमानों के परस्पर व्यवहार में कुछ उदारता भी दिखाई देने लगी थी। किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू मुस्लिम धर्म अपनाने लगे। मुस्लिम वर्ग की कामवासना से बचने के लिए हिन्दुओं में बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा का प्रचलन हो रहा था। राजपूत लोगों में सती प्रथा और जौहर की प्रथा प्रचलित अंधविश्वासों का बोलबाला था। आर्थिक अभाव के कारण हिंदू समाज की दशा अच्छी नहीं थी। उन्हें संघर्षमय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। कबीरदास ने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों व धर्म के नाम किये गये दिखावे पर अपने काव्य में अनेक स्थलों पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः कबीरदास समाज में व्याप्त इन पाखंडों व दिखावे को समाप्त कर एक स्वस्थ समाज की रचना करना चाहते थे।

**प्रश्न 10. कबीर युगीन राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिये।**

**उत्तर**–राजनीतिक दृष्टि से कबीर का युग संघर्षमय युग था। इस युग में राजनीति में उथल-पुथल मची हुई थी। कबीर का युग तुगलक वंश के अन्तिम पड़ाव से आरंभ होता है तथा सैयद वंश के अंतिम पड़ाव पर समाप्त हो जाता है। तुगलक वंश के

राजा सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की असफल योजनाओं के कारण तुगलक वंश को धक्का लगा था। इसी प्रकार आगे चलकर फिरोज तुगलक में धार्मिक असहिष्णुता के कारण पूरे देश में धार्मिक उपद्रव व अशांति का वातावरण बन गया था। दक्षिण में विजय नगर ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया था। 1398 में तैमूरलंग द्वारा दिल्ली पर आक्रमण किया गया जिसमें मचाई नई तबाही को भारतीय इतिहास कभी नहीं भूल सकता। उसने विजित प्रदेशों में लूटपाट की और निर्दोष लोगों कीत्याएँ की गईं। उसके इस आक्रमण से दिल्ली का गौरव नष्ट हो गया। 1416 ई. में दिल्ली पर खिज्र खाँ ने अधिकार करके सैयद वंश के शासन की नींव डाली। इस वंश का पैंतीस वर्ष तक शासन रहा। सैयद वंश के शासकों की कमजोरी का लाभ उठाकर लाहौर के शासक बहलोल ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और लोदी वंश की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारी सिंकदर लोदी ने अपने शासन काल में अनेक भीषण युद्ध किये और नागौर, मालवा, धौलपुर आदि कई राज्यों को अपने शासन में मिला लिया था। सिंकदर लोदी भी अत्यंत संकीर्ण विचारों वाला राजा था। वह इस्लाम का कट्टर समर्थक था। उसने हिंदुओं पर बहुत अत्याचार किये। यहाँ तक कि उसने कबीर जैसे संत को भी क्षमा नहीं किया। इब्राहिम लोदी इस वंश का अन्तिम शासक था जिसे बाबर ने पानीपत के मैदान में हराकर लोदी वंश का अंत कर दिया था तथा मुगलवंश की नींव डाली थी। किंतु इससे आठ वर्ष पूर्व कबीर का निधन हो चुका था।

इन सब तथ्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि कबीर के युग में भारत की राजनीतिक स्थिति ठीक नहीं थी। केंद्रीय शक्ति में एकता का अभाव था। इसलिए राजनीतिक स्तर पर उथल-पुथल मची हुई थी। राजनीति की दृष्टि से कबीर का युग जनता विरोधी युग था। जनता पर अनेक अत्याचार किये गये और अनेक कर लगा कर जनता का शोषण किया गया। कबीरदास ने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख भी किया है–

**"कबीर नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाय।**
**ऐ पुर पटन ऐ गली, बहुरि न देखे आय।।"**

**प्रश्न कबीरदास के समय की धार्मिक परिस्थितियों का सार रूप में उल्लेख कीजिये।**

*अथवा*

**कबीरकालीन धार्मिक परिवेश पर विचार कीजिए।**

**उत्तर**–कबीर के युग में समाज की धार्मिक दशा अच्छी नहीं थीं। संपूर्ण समाज धर्म के नाम पर विविध संप्रदायों में बँटा हुआ था। महाबुद्ध की मृत्यु के पश्चात् बौद्ध धर्म में विकार उत्पन्न हो गये और वह खंडित होकर बिखर गया। वह हीनयान और महायान दो भागों में विभाजित हो गया। हीनयान में सिद्धांतों की कठोरता थी। इससे लोग उसकी ओर आकृष्ट नहीं हुए। महायान में व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया गया था। उसमें सभी लोगों को सम्मिलित होने की आज्ञा थी। अधिक उदारता के कारण वह भी विकारयुक्त हो गया। महायान के पश्चात् सहजयान की नींव डाली गई। यह पाखंडवाद, बाह्याचार, पुस्तकीय ज्ञान आदि के प्रति खुला विद्रोह था। आगे चलकर सहजयान में भी विकार उत्पन्न हो गये थे। उस समय शंकराचार्य का मायावाद सहजवादियों के शून्यवाद के लिए चुनौती था।

कबीर से पूर्व प्रचलित नाथ पंथ में विद्रोह था। इसमें भावना, दमन मार्ग का त्याग, बाह्याचारों का विरोध, गुरु की महिमा को महत्त्व, लोकभाषा में प्रतीक योजना, आदि विशेषतायें थीं। कबीर की वाणी पर नाथ पंथ का प्रभाव देखा जा सकता है। कबीर युग से पूर्व जैन धर्म का भी प्रचार प्रखर हो चुका था। कबीर पर जैन मुनियों की अहिंसा और उदारता का प्रभाव रहा है। कबीर युगीन समाज में गुरुगोरख नाथ के नाथ पंथ का खूब प्रचार हो रहा था। नाथ पंथ में निर्गुण और हठयोग के तत्वों का समन्वय था। नाथपंथ के साधकों ने जातिगत भेदभाव का भी खंडन किया था। कबीर पर गुरू गोरखनाथ की वाणी का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होंने भी धर्म के नाम पर किये गये पाखंड पर जमकर प्रहार किये है।

**प्रश्न कबीर के जन्म की तिथि व जन्म स्थान के विषय में विद्वानों द्वारा दिये गए मतों का सार में उल्लेख कीजिए।**

**उत्तर**–कबीर के जीवन के संबंध में आज भी विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। डॉ. हंटर ने कबीर का जन्म काल संवत् 1473 ई. बताया है। धर्मदास, जो कि कबीर के प्रमुख शिष्यों में से एक था, उन्होंने अपने एक पद में कबीर का जन्म संवत् 1455 बताया है–

**चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।**
**जेठ सुदी बरसायत को, पूर्णमासी प्रकट भये।।**

इस छंद के अनुसार कबीर का जन्म संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सोमवार को होना चाहिए। किन्तु संवत् 1455 एवं 1456 में कोई भी ज्येष्ठ पूर्णिमा नहीं थी जिस दिन सोमवार हो। डॉ. पारसनाथ तिवारी में चन्द्रवार को दिन का सूचक न मानकर स्थान का सूचक माना है।

कबीरदास के जन्म की भांति ही उनका मृत्यु काल भी रहस्यमय है। कबीर की मृत्यु के संबंध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कबीर की मृत्यु के संबंध में एक जनश्रुति प्रचलित है–

**संवत पन्द्रह सौ पछत्तरा कियो मगहर को गौन।**
**माघा सुदी एकादशी रलो पौन में पौन।।**

कहने का तात्पर्य है कि कबीर का निधन संवत् 1575 को हुआ था।

सुप्रसिद्ध विद्वान् चन्द्रबली पांडे के अनुसार कबीर का जन्म गाँव बेलहारा पोखर ही तालाब है, जहाँ विधवा ब्राह्मणी ने नवजात शिशु को त्याग दिया था। कबीर पंथी कबीर का जन्म स्थान काशी के समीप लहरतारा तालाब को मानते हैं। कबीर ने स्वयं भी अपने आप को काशी का जुलाहा कहा है।

**प्रश्न . "कबीर की जाति एवं धर्म के विषय में विद्वानों के भिन्न मत हैं।" स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर**–कबीर जी किस जाति से संबंध रखते थे। उनका संबंध हिन्दू धर्म से था या फिर वे मुसलमान थे अथवा किसी अन्य धर्म के अनुयायी थे आदि प्रश्न आज भी विद्वानों के लिए चुनौती बनकर खड़े हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने आप को जुलाहा कहा है–

1. **तूं बाह्मन मैं कासी का जुलाहा।**
2. **हरि के नाउ बिना किन गति पाई।**
   **कहै जुलाह कबीर।**

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कबीर जुलाहा जाति से संबंध रखते थे। गुरु रज्जबदार व गुरु अनन्तदास ने कबीर को जुलाहा घोषित किया है। कबीरदास हिन्दू थे या मुसलमान यह कहना कठिन है क्योंकि उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर हिन्दू संस्कारों का अत्यन्त सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है और कई स्थलों पर मुस्लिम धर्म के संस्कारों का भी। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर का संबंध ऐसे योगियों से बताया है जो थोड़े समय पूर्व मुस्लिम धर्म में सम्मिलित हुए थे। फलस्वरूप उनके परिवार में हिन्दू एवं मुस्लिम धर्मों के संस्कारों का समन्वित रूप था। डॉ. बड़थवाल ने उन्हें कोरी किन्तु जुलाहा कुल से संबंध बताया है। डॉ. विद्यापति मालविका ने कोली राजपूत वंशज कहा है जिनका व्यवसाय खेती करना व जुलाहा का काम करना था। कोली राजपूतों ने मुसलमानों के आक्रमण के समय बौद्ध धर्म को अपना लिया था और बाद में मुस्लिम धर्म में सम्मिलित हो गए थे।

अतः स्पष्ट है कि कबीर की जाति व धर्म के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। उन्हें हिन्दू धर्म का पूरा ज्ञान था। उन्होंने वैष्णव संस्कारों की प्रशंसा की है। नाथ एवं सिद्ध योगियों की क्रियाओं का भी वर्णन उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। मुस्लिम धर्म की अनेक बातों का भी उन्होंने वर्णन किया है। इससे भी बढ़कर इन धर्मों में व्याप्त बुराइयों पर भी उन्होंने निडरतापूर्वक प्रकाश डाला है। अतः कहा जा सकता है कि कबीरदास न हिन्दू थे, न मुसलमान अपितु वे सच्चे इंसान थे। इंसानियत ही उनका धर्म व ईमान था।

**प्रश्न "कबीर की जाति और परिवार संबंधी प्रश्न पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं।" इस कथन के प्रकाश में कबीर की जाति एवं परिवार का उल्लेख कीजिये।**

*अथवा*

**कबीर के जीवन पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–जनश्रुति के आधार पर यह माना जाता है कि कबीरदास का पालन-पोषण नीरू-नीमा जुलाहा दंपति के घर हुआ था। कुछ लोग कबीर को उनका दत्तक पुत्र मानते हैं। इस प्रकार से कबीर के माता-पिता के संबंध में तीन मत प्रचलित हैं–

1. कबीर के रूप में ईश्वरीय शक्ति ने अवतार लिया।
2. कबीर नीरू और नीमा जुलाहा दम्पत्ति द्वारा पोषित पुत्र है।
3. तीसरा मत है कि कबीर नीरू-नीमा के औरस पुत्र थे। कबीर के प्रति नीरू-नीमा का स्नेह रहा है।

इस संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है–

**"बापि दिलास मेरे कीन्हा।"**

कबीर का परिवार छोटा सा परिवार था। माता-पिता, स्वयं, पत्नी और बेटा-बेटी। इन सबके संकेत कबीर की वाणी में भी मिल जाते हैं। कबीर की पत्नी का नाम लोई था, उन्होंने स्वयं लिखा है–

**"रे या में क्या मेरा, क्या तेरा, लाज न मरहि कहति घर मोरा।**

× × × × × × × × ×

**कहत कबीर सुनुहु री लोई, हम तुम विनसि रहेगी सोई।"**

कुछ कबीरपंथी लोग कबीर को अविवाहित मानते हैं किंतु यह मत अधिक सार्थक नहीं लगता। एक स्थल पर अपनी वाणी में कबीरदास ने अपने पुत्र कमाल के कुकृत्यों से खीझ कर कहा है–

**"बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।**

**हरि का सुमिरन छाँड़ि के, घर ले आया माल।।"**

अतः स्पष्ट है कि अंतः-बाह्य साक्ष्यों से पता चलता है कि निश्चित ही कबीरदास गृहस्थ थे और उनका एक परिवार भी था। उनकी विचारधारा से भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वे वैराग्य लेकर जंगलों में बैठकर तपस्या करने को दिखावा कहते थे। इसलिए वे गृहस्थी के साथ-साथ प्रभु-भक्ति व प्रभु-प्राप्ति पर बल देते थे।

कबीरदास की जाति व धर्म को लेकर भी विद्वानों में एक मत नहीं है। यह कहना बड़ा कठिन है कि वे हिंदू थे या मुस्लिम। कुछ लोग उन्हें बौद्ध मतावलम्बी भी कहते हैं किंतु कबीर ने बड़े गर्व के साथ अपने आपको जुलाहा कहा है। एक स्थल पर तो उन्होंने अपने आपको 'कोरी' भी कहा है। उनके अधिकांश पदों से पता चलता हैं कि वे जुलाहा जाति के थे–

(क) **'तू बाह्मन मैं कासी का जुलाहा'**

(ख) **हरि के नाउ बिन किन गति पाई।**
**कहै जुलाहा कबीर।**

(ग) **जैसे जल जलही दुरि मिलियौ।**
**त्यौ दुरि मिला जुलाहा।**

इन पंक्तियों से पता चलता है कि कबीरदास जुलाहा जाति के थे। गुरु अनंतदास एवं गुरु रज्जबदास ने भी कबीर को जुलाहा जाति से संबंधित बताया है।

**प्रश्न "कबीरदास जितने विद्रोही थे उतने ही विनम्र भी।"–कैसे?**

**उत्तर**–कबीरदास को सभी आलोचक विद्वानों ने विद्रोही कहा है किंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है। वे विद्रोही होने के साथ-साथ विनम्र स्वभाव वाले व्यक्ति थे। निश्चय ही कबीरदास के जीवन में यह गुण सत्संग जन्य था। संत सेवा को वे परम सौभाग्य मानते थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के गुण को इन शब्दों में स्वीकार किया है–

**"कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।**

**कबीर ऐसा है रहया ज्यूँ पाँऊँ तलि घास।।"**

कबीरदास ने अपने आपको पाँव तले की घास के समान बताया है। यह भाव उनके विनम्र स्वभाव होने को प्रमाणित करता है।

एक अन्य स्थल पर कबीरदास ने दीनता के उपदेश में ईश्वर प्राप्ति की बात स्वीकर की है–

**"रोड़ा हैं रहिबाट का तजि पाषंड अभियान।**

**ऐसा जे जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान्।।"**

कबीरदास के व्यक्तित्व में विनम्रता उस सगय अपनी पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ दिखाई देता है जहाँ वे अपना संबंध प्रभु से जोड़ने के लिए अपने आप को राम का कुत्ता बताने में गर्व अनुभव करते हैं–

**कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।**

**गले राम की जेबड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ।।"**

कबीरदास जी अपने गुरु के समक्ष जिस विनम्रता से आते हैं, वैसी विनम्रता अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है–

**"राम नाम के पटतरे, देबै को कुछ नाँहि।**
**क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।"**

**प्रश्न "कबीर स्वाभिमानी व्यक्ति थे"–कबीर वाणी के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि कीजिये।**

**उत्तर**–कबीरदास की वाणी के अध्ययन से पता चलता है कि कबीरदास एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि स्वाभिमान उनके जीवन का अभिन्न अंग था। वे स्वाभिमान पर की गई चोट सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपने युग में व्याप्त परंपराओं एवं पाखंडों का विरोध किया और साथ ही स्वाभिमान की रक्षा भी की। वे बड़ी-से-बड़ी शक्ति के सामने नहीं झुके–

**"ये सिर नवे न रामकू चाहे गिरियो टूट।"**

कबीरदास में स्वाभिमान के साथ-साथ आत्मविश्वास भी था। वे दूसरों से सुनी-सुनाई बातों या पोथियों में लिखित बातों पर विश्वास नहीं करते थे। वे आंखों देखी एवं अनुकूल विचारों पर ही विश्वास करते थे। इसलिए उन्हें अपने ऊपर अधिक भरोसा था। वे कहते भी हैं–

**मेरा तेरा मनवा कैसे इक होई रे।**
**मैं कहता हूं आँखिन की देखी।**
**तू कहता है कागज की लेखी।**
**मैं कहता हूं सुरझावनहारी,**
**तू राखों उरझार रे।**

**प्रश्न "कबीर की वाणी से उनके साहस और निडरता का बोध होता है।"–इस कथन की समीक्षा कीजिये।**

**उत्तर**–'कबीर की वाणी से पता चलता है कि कबीर का व्यक्तित्व सरलता, सहजता एवं व्यावहारिकता के गुणों से परिपूर्ण है। किंतु कबीरदास के व्यक्तित्व में साहसिकता एवं निडरता की विशेषता भी देखी जा सकती है। उन्होंने कभी गलत काम को देखकर आंखें बंद नहीं कीं, अपितु उन्होंने गलत काम का निडरतापूर्वक जोरदार शब्दों में खंडन किया है। उन्होंने अपने युग में प्रचलित ढोंग और पाखंड का विरोध किया और साथ ही ढोंगी साधुओं और पाखंडी पंडितों की भी खबर ली है। उनके साहस में उनकी प्रचंडता देखी जा सकती है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले मिथ्याभिमानी पंडित को वे उसका आईना दिखाते हुए स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–

**"जो तू ब्राह्मन जाया,**
**आन बाठ ह्वै क्यों नहीं आया।"**

कबीरदास के इस कथन में जितनी प्रचंडता अथवा अक्खड़पन है, उतनी निर्भीकता एवं साहसिकता भी है। इतना ही नहीं उन्होंने मुल्ला की वांग और हिन्दुओं की पीतल पिटत पर तिलमिला देने वाली उक्तियाँ भी बड़े साहसपूर्ण ढंग से कही हैं। इन्हीं उक्तियों के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदाय के लोग उनके खिलाफ हो गये थे किंतु उन्होंने किसी की परवाह किये बिना अपनी बात को साहसपूर्ण कह डाला था–

**"मस्जिद भीरत मुल्ला पुकार, क्या साहिब तेरा बहिरा है।**
**चिउँटी के पग नेवर बाजै, सोभी साहिब सुनता है।**
**पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।।"**

× × × × ×

**माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।**
**मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।**

**प्रश्न "कबीरदास ने वैष्णव मत का पक्ष लिया है किंतु वैष्णव धर्म में व्याप्त बाह्याडम्बरों का खंडन भी जम कर किया है।"–इस कथन की समीक्षा कीजिये।**

**उत्तर**–कबीर की वाणी अथवा काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि कबीर वैष्णव धर्म का सम्मान करते थे। अनेक स्थलों पर वैष्णव मत के पक्षधर बने दिखाई देते हैं। उन्होंने वैष्णव धर्म को अन्य धर्मों से श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

यथा–

**"बैस्नौ की कूकरि भली, साकत की बुरी गाइ।**
**वह बैठी हरि जस सुने, यह पाप बिहारान जाइ।।"**

किंतु दूसरी ओर कबीरदास ने वैष्णव धर्म में व्याप्त बाह्याडम्बरों, मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, तिलक छापा, माला धारण करना आदि का जमकर विरोध किया है। वैष्णव धर्म की मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कबीरदास ने लिखा है–

**पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।**
**ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।**

माला धारण करना कबीर की दृष्टि में व्यर्थ है। वे कहते हैं कि माला फेरने की अपेक्षा मन को ईश्वर में लगाना चाहिए–

**"कर में तो माला फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि।**
**मनुवा तो चहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नांहि।।"**

अपने आप को पंडित कहने वाले तथाकथित पंडितों की पोल खोलते हुए कबीरदास जी कहते हैं–

**पंडित होये के आसन मारै, लंबी माला जपता है।**
**अंदर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।**

कबीरदास यद्यपि वैष्णवों के पक्षधर बनकर सामने आते हैं और उन्हीं के राम रसायन से वे आनंद मत है किंतु उनके दोषों को दर्शाने में भी पीछे नहीं हटते–

**बैस्नौ भये तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।**
**छापा तिलक बनाइ कर, दग्ध्या लोक अनेक।।"**

**प्रश्न कबीर के काव्य में अभिव्यक्त मानवतावादी धर्म पर सार रूप में प्रकाश डालिये।**

*अथवा*

**कबीर के मानवतावाद का परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–कबीर मूलतः संत थे। वे न हिंदू थे, न मुसलमान। वे सच्चे अर्थों में सच्चे मानव थे। उन्हें पूरी मानवता से प्रेम था। उन्होंने अपने युग के जीवन को गहराई देखा व परखा था। उन्हें जहाँ कहीं भी कुछ बुरा या उलटा दिखाई दिया, वहीं पर उसका विरोध किया। कबीर के काव्य में जहाँ हिंदू धर्म में व्याप्त बुराइयों का विरोध किया गया है, वहीं मुस्लिम धर्म के बाह्याडम्बरों की भी जमकर आलोचना की गई है। इसलिए दोनों धर्मों के लोग कबीर से अप्रसन्न थे। वस्तुतः उन लोगों ने कबीर की भावनाओं को समझा ही नहीं था। वस्तुतः कबीर किसी धर्म के विरूद्ध नहीं थे। अपितु वे धर्म में आई बुराइयों के विरुद्ध थे। उन्होंने उन बुराइयों को दूर करके धर्म के सच्चे स्वरूप को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया था। कबीर का मत है कि मानव-मानव में कोई भेदभाव नहीं है। सब मानव एक ईश्वर की संतान हैं तो फिर उनके बीच भेदभाव कैसा? इसलिए कबीरदास ने सामाजिक व धार्मिक विसंगतियों का विरोध करते हुए मानव एकता का संदेश दिया है।

कबीर के काव्य में मानवतावादी धर्म का प्रचार-प्रसार किया गया है। जिसमें बिना किसी भेदभाव के सबको समान समझा गया है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से अछूत व दलित समझे जाने वाले लोगों के लिए भी प्रभु-भक्ति के द्वार खोल दिये थे। कबीर का यह कदम निश्चय ही क्रांतिकारी कदम था क्योंकि प्राचीनकाल से उन्हें किसी मंदिर व मस्जिद में प्रवेश करने तक का अधिकार नहीं था। अब वे बिना किसी भेदभाव के ईश्वरों पासना कर सकेंगे। उन्होंने अपने युग के धर्म के तथाकथित ठेकेदारों व मानवता के शत्रुओं काजी, मुल्ला, पंडित, पुरोहित आदि को भी आड़े हाथों लिया। राम-रहीम, अल्ला-ईश्वर की एकता का भी उपदेश दिया। उनका कथन है–

**क्या उजूँ जप-संजम कीएँ क्या मसीति सिरू नाएँ।**
**दिल महिं कपट निजाम गुजारें क्या हज कावै जाएँ।।**
**बाह्यान ग्यारसि करै चौबीसो काजी मोह रमजाना।**
**ग्यारह मास कहां क्यूँ खाली एकहि मास नियाना।।**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीरदास अपने युग के महान् संत, दार्शनिक, कवि और समाज सुधारक और मानवता के समर्थक थे। उन्होंने अपने युग के जीवन का सुधार करने का यथासंभव प्रयास किया और मानवीय एकता की स्थापना की।

**प्रश्न 20. "कबीर दलितों एवं शोषितों के सहायक थे"–सिद्ध कीजिये।** **(Imp.)**

**उत्तर**–कबीरदास के युग में जातिगत भेदभाव पूरे जोरों पर था। ऊँची जाति के लोग छोटी व निम्न जाति के लोगों से न केवल घृणा ही करते थे, अपितु उनका शोषण भी करते थे। कबीर ने इस तथ्य को अनुभव किया और इसका खुलकर विरोध किया। वे स्वयं जुलाहा जाति के थे और जुलाहा जाति को भी छोटी या नीची जाति ही समझा जाता था। इसलिए कबीरदास भी इस कटु सत्य के भोगी थे। उस समय के राजाओं द्वारा ब्राह्मणों द्वारा लिखवाये गये ग्रंथों में शूद्रों को दबाकर रखने की बात कही गई है। इसके अनेक प्रमाण विद्यमान हैं। तुलसी का यह कथन इस बात का साक्षी है–

**"ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।"**

इसी प्रकार एक स्थल पर तुलसी ने शूद्रों को ज्ञानहीन कहकर प्रताड़ित किया है–

**"सुद्र नहिं गुण ज्ञान प्रवीणा।"**

अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन उच्च समाज का शूद्र व छोटी जाति के लोगों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं था। किंतु कबीरदास ने शूद्रों व दलितों की शोचनीय दशा को सुधारने का प्रभाव किया। उन्होंने उन पक्षों व तत्त्वों व तथाकथित विद्वानों पर जम कर प्रहार किये जिनके द्वारा उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करते थे। उन्होंने हिंदू धर्म में व्याप्त बाह्याडम्बरों और रूढ़िवादी परंपराओं खंडन किया। इसी प्रकार मुस्लिम वर्ग को सम्मान देने हेतु उन्हें ईश्वर की भक्ति करने का उपदेश दिया अर्थात् उनके लिए प्रभु भक्ति के द्वार खोल दिये।

उस युग के जो कर्त्ता-धर्त्ता दुराचारी बन चुके, ये उन्हें खूब प्रताड़ित किया। कहीं उन्होंने माला धारण करने वालों को फटकारा तो कहीं धार्मिक होने के बहुरूपियों को नंगा किया–

**"माला तो कर में फिरै जीहि फिरै मुख माही।**
**मनुवा तो चहुं दिसि फिरै, यह तो सुमरिन नाहि।।"**

**प्रश्न 21. कबीर के काव्य में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक सद्भाव पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–कबीरदास के युग में हिन्दू व मुस्लिम दो संप्रदायों में आपस में भेदभाव के साथ उनके अपने संप्रदायों के भीतर भी अनेक कुरीतियों एवं परंपरावादी रूढ़ियों के कारण मानव-मानव के बीच वैर-विरोध व घृणा की भावनायें व्याप्त थीं। कबीरदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त छुआछूत, जातिगत भेदभाव, मांसभक्षण, हिंसात्मक प्रवृत्तियों की कटु आलोचना की है। उन्होंने राम-रहीम के नाम पर होने वाले झगड़ों की खुलकर निंदा की है। उनका कथन है–

**"हिन्दू कहत है राम पियारा, मुसलमान रहमाना।**
**आपस में दोऊ लड़त मरत है मरम कोऊ नहि जाना।"**

कबीरदास ने हिंदू-मुस्लिम दोनों संप्रदायों के जीवन में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों का खण्डन किया क्योंकि वे तत्कालीन समाज में साम्प्रदायिक सद्भावना का विकास करना चाहते थे। वे न केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में समानता लाना चाहते हैं अपितु वे तो हिंदू और मुसलमान के बीच शत्रुता के भाव को मिटाकर दोनों में मेल-मिलाप स्थापित करने के पक्ष में थे। वे मानव-मानव के बीच हर प्रकार की बाधा व दीवार को गिराकर मानव-एकता स्थापित करना चाहते थे। आपसी सौहार्द ही मानव-जीवन के विकास का आधार है। इसलिए वे हिंदू व मुसलमान दोनों के लिए कहते हैं–

**भूला भरमि परै जो कोई।**
**हिन्दु तुरक झूठ कुल दोई।।**

कबीरदास को किसी ब्राह्मण या किसी काजी से वैर-विरोध नहीं था। वे तो उनके दिखावे व ढोंगपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध थे। उन्होंने सच्चे ब्राह्मण व काजी की पहचान बताते हुए कहा है–

**"सो हिन्दू सो मुसलमान जा का धर्म रहे ईमान।**
**सो ब्राह्मण जो कहै ब्रह्म गियान, काजी सो जो जाने रहिमान।"**

कबीरदास राम और रहीम में एकता स्थापित करके तत्कालीन समाज में साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना की। उन्होंने निर्गुण ईश्वर की भक्ति के लिए भी सबके लिए समान रूप से द्वार खोल दिये थे। सभी मानव एक ही ईश्वर की संतान हैं फिर भेदभाव कैसा?